विचार दृष्टि

वर्ष : 9 अंक : 32 जुलाई-सितंबर 2007 25 रुपये

- देश में बढ़ती धर्मिकता या आदमी की बीमार मनोवृत्ति
- सूखती संवेदना और मुरझाता राष्ट्र
- कलम कमजोर पड़ चुकी है
- संस्मरण और राजस्थान का संदर्भ
- हर आँसू मुस्कान बना दे या अल्लाह
- राष्ट्रकवि दिनकर : जो आग के अक्षर लिखते थे

नियमित प्रकाशन के लिए 'विचार दृष्टि' को हमारी

हमारी शुभकामनाएँ

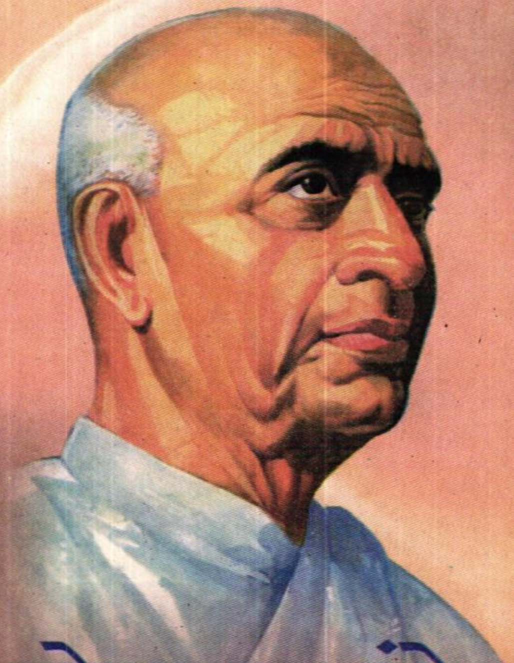

पटेल फाउंडेशन

(सरदार पटेल के विचारों के प्रति समर्पित)

संस्था का ध्येय है –

- सरदार पटेल के विचारों को जन-जन तक पहुँचाना
- राष्ट्रीय एकता व अखंडता को अक्षुण्ण बनाए रखना
- सामाजिक समरसता कायम करना
- सांप्रदायिक सद्भाव का वातावरण बनाना
- पाखंड, अंधविश्वास और रूढ़िवादी प्रवृत्तियों से परहेज करना

तो आइए, आप भी इस अभियान का एक हिस्सा बन इसे अपेक्षित सहयोग प्रदान करें।

147, अंसल चैंबर-II, भीकाजी कामा प्लेस, नई दिल्ली

फोन : 30926763 • मो. : 9891491661

विचार दृष्टि

(राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक त्रैमासिकी)
वर्ष- 9 जुलाई-सितंबर, 2007 अंक- 32

संपादक-प्रकाशक : सिद्धेश्वर
सं. सलाहकार : गिरीश चंद्र श्रीवास्तव
प्रबंध संपादक : सुधीर रंजन
उप संपादक : डॉ॰ शाहिद जमील
सहायक संपादक : उदय कुमार 'राज़'
आवरण साज-सज्जा : संजय कुमार
आवरण : अंजलि की कृति
शब्द संयोजन : गंगा-यमुना प्रकाशन, आवास सं॰ सी॰/6, पथ सं॰ 5,आर॰ ब्लॉक, पटना-800001

संपादकीय-प्रकाशकीय कार्यालय

'दृष्टि', 6 विचार विहार, यू॰-207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
☎ : (011) 22530652 / 22059410
मोबाईल : 9811281443 / 9811310733
फैक्स : (011) 52487975
E-mail: vichardrishti@hotmail.com
'बसेरा', पुरन्दरपुर, पटना-800001
☎ : 0612-2228519

पटना कार्यालय

आवास सं॰ सी॰/6, पथ सं॰ 5, आर॰ ब्लॉक, पटना-800001 ☎ : 0612-2226905

ब्यूरो प्रमुख

नागपुर : मनोज कुमार ☎ : 2553701
कोलकाता : जितेन्द्र धीर ☎ : 24692624
चेन्नई : डॉ॰ मधु धवन ☎ : 26262778
तिरूवनंतपुरम : डॉ॰ एन॰ चंद्रशेखरण नायर
बैंगलूर : पी॰एस॰चन्द्रशेखर ☎ : 26568867
हैदराबाद : डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा ☎ : 23391190
जयपुर : डॉ॰ सत्येंद्र चतुर्वेदी ☎ : 2225676
अहमदाबाद : रमेश चंद्र शर्मा 'चंद्र'

प्रतिनिधि

लखनऊ : प्रो. पारसनाथ श्रीवास्तव,
सतना : डॉ. राम सिया सिंह पटेल
देहरादून : डॉ. राज नारायण राय
हैदराबाद : श्री चंद्रमौलेश्वर प्रसाद
एरणाकुलम : डॉ॰ पी॰ राधिका
मुद्रक : प्रोलिफिक इनकारपोरेटेड एक्स-47, ओखला इंडस्ट्रीयल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-20

मूल्य एक प्रति	:	25 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
द्विवार्षिक	:	200 रुपये
आजीवन सदस्य	:	1000 रुपये
विदेश में एक प्रति	:	US $ 05
वार्षिक	:	US $ 20
आजीवन	:	US $ 250

एक 👁 में रचना और रचनाकार

पाठकीय पन्ना – 02
संपादकीय – 05

विचार प्रवाह :
सूखती संवेदना और मुरझाता राष्ट्र –डॉ. राकेश कुमार सिंह 08
कलम कमजोर पड़ चुकी है –राजू रंजन 11

साहित्य :
रात ढल गई (कहानी) –सुखदेव नारायण 12
दाग़ (कहानी) –डॉ शाहिद जमील 14

काव्य-कुंज : 17
करामत अली, मनौव्वर राना, प्रो. शमशाद हुसैन, दिलावर फुगार, प्रो. शमशाद हुसैन, मो. सुलेमान, पिल्ले, पुरुषोत्तम 'पुष्प', हितेश कुमार शर्मा, रमेश चन्द्र शर्मा 'चंद्र', डॉ. मंजुला गुप्ता, डॉ. जनार्दन यादव, विनोद कुमार झा, डॉ. हीरालाल नंदा 'प्रभाकर', उदय कुमार 'राज़'

आलेख :
संस्मरण और राजस्थान का संदर्भ –डॉ. फ़रज़ाना सुलताना 22

समीक्षा :
लेखक के चिंतन पक्ष को उजागर करती कृति –डॉ. मंजुला गुप्ता 25
हर आँसू मुस्कान बना दे या अल्लाह –उदय कुमार 'राज़' 26

साक्षात्कार :
कविता में काम चेतना –प्रो. सुरेश चन्द्र द्विवेदी 27

न्याय-जगत :
साहित्यकारों को चाहिए न्याय –प्रो. दीनानाथ 'शरण' 30

समाज :
सड़ी ढुकरियें और रंगदारी का समाजशास्त्र –आर.एस. पटेल 31
भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में आरक्षण का औचित्य –सिद्धेश्वर 32

दृष्टि :
ख़तरे के कगार पर खड़ी क्षेत्रीय भाषाएँ –सिद्धेश्वर 35

संस्मरण :
राष्ट्रकवि दिनकर जो आग के अक्षर लिखते थे –विमल राजस्थानी 37
क्यों कैलाश! ऐसी जल्दी क्या थी –सत्यनारायण 41

राजनीतिक नज़रिया :
हम कब आत्मसात करेंगे लोकतांत्रिक मूल्यों को –सिद्धेश्वर 43

आधी आबादी :
गृहस्थ जीवन की ख़ुशहाली का राज़ –जगदीश पाल सनपेडिया 45

गतिविधियाँ : 47
चैन्नई की चिट्ठी 50
हैदराबाद की चिट्ठी 51
साभार स्वीकार : 55

साक्षात्कार
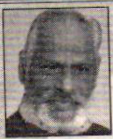

समीक्षा

आधी आबादी

सम्मान

सम्मान

संस्मरण

पत्रिका-परामर्शी

❑ श्री यू.सी. अग्रवाल ❑ पद्मश्री डॉ.श्यामसिंह 'शशि' ❑ प्रो॰ राम बुझावन सिंह ❑ प्रो. धर्मेंद्र नाथ 'अमन' ❑ श्री जियालाल आर्य ❑ डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी ❑ डॉ॰ महेन्द्र भटनागर ❑ डॉ॰ एल॰एन॰ शर्मा

पत्रिका-परिवार के सभी सदस्य अवैतनिक हैं
रचनाकारों के विचारों से पत्रिका-परिवार का सहमत होना आवश्यक नहीं।

प्रिय पाठको! प्रकाशित रचनाओं तथा अंक के प्रस्तुति पक्ष पर आपकी प्रतिक्रिया, पत्रिका परिवार के लिए एक संबल है। हमें आपकी प्रतिक्रिया का बेसब्री से इंतज़ार रहता है। प्राप्त प्रतिक्रियाओं से हम केवल उन्हीं प्रतिक्रयाओं को शामिल कर पाते हैं, जिनमें वस्तुनिष्ठ, कृतियों से संदर्भित संक्षिप्त समीक्षा / टिप्पणी या मार्ग-दर्शक बिंदु आदि होते हैं। भ्रामक प्रशंसा और इर्ष्या-दर्शी विचारों के प्रेषण से डाक-ख़र्च ज़ाया होता है।

❍ उप संपादक

पत्रिका निरंतर प्रगति के पथ पर

'विचार दृष्टि' जैसी व्यवसायिक पत्रिका का निरंतर प्रगति के पथ पर आगे बढ़ते हुए नौवें वर्ष में प्रवेश करना निःसंदेह बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह सब आपके अथक परिश्रम और कुशल संपादन का परिणाम है, जिसके लिए आप बधाई के पात्र हैं। समाज-सेवा और साहित्य के उन्नयन के लिए पूर्णतः समर्पित ऐसे कर्मठ व्यक्तित्व के व्यक्तित्व और विचार के संबंध में प्रो॰ राम बुझावन सिंह ने पुस्तक लिखकर बड़ा प्रशंसनीय कार्य किया है। डॉ॰ मणिशंकर प्रसाद द्वारा लिखी गई पुस्तक की समीक्षा भी महत्त्वपूर्ण और पठनीय है।

आपने अपने लेख 'बेटा के लिए त्राहिमाम क्यों?' में आज के समाज की कटु सच्चाइयों को बड़े बेबाक ढंग से उजागर कर समाज का बड़ा उपकार किया है। काश! ऐसे विचारणीय लेख पढ़कर गुमराह हो रही युवा पीढ़ी की आँखें खुलतीं। मैंने अपने 84 वर्षीय लंबे जीवन में न जाने कितने वृद्धजनों को अपनी ही संतानों की उपेक्षा और उनके दोहन का शिकार होते तथा बुढ़ापे में संत्रासपूर्ण जीवन व्यतीत करते देखा है। अतः आपके विचार का मैं पूर्ण रूप से समर्थन करता हूँ।

मित्रवर परमानंद 'दोषी' की दुःखद मृत्यु का समाचार पत्रिका में पढ़कर बड़ा आघात लगा। उनके बीसों मार्मिक पत्रों और प्रेषित जीवनियों को मैंने धरोहर के रूप में संजोकर रखा है।

संपर्क : 'कृष्ण कुंज', 2/51-ए॰, अर्दली बाज़ार, अधिकारी हॉस्टल के समीप, वाराणसी- 221002

हमें उपयोगी सामग्री मिल रही है

अंक 31 मिला। 'संपादकीय' प्रबोधक है और इसे मैं आपके 'राष्ट्रवादी नागरिक' होने का सशक्त प्रमाण मानता हूँ। यह चिंतन हमें भी राष्ट्रीयता की भावना से ओतप्रोत कर रहा है। महामहिम पूर्व राष्ट्रपति विचारक स्व॰ डॉ॰ शंकर दयाल शर्मा की मान्यता रही है कि "किसी भी विदेशी भाषा में से भाषा के वे रेशे झड़ जाते हैं जो हमें अंदर से छू सकें। इसलिए किसी भी देश के लिए मातृभाषा और राष्ट्रभाषा का महत्त्व बढ़ जाता है।" विचारक तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री अटलबिहारी वाजपेयी की मान्यता है कि "किसी भी राष्ट्रकी संस्कृति और अस्मिता की पहचान उसकी भाषा से होती है। विश्व में वही राष्ट्र प्रतिष्ठित और सम्मान का पात्र होता है, जिसे अपनी भाषा, संस्कृति और संस्कारों पर गर्व होता है।" महामहिम राष्ट्रपति डॉ॰ ए॰पी॰जे॰ अब्दुल कलाम ने संदेश-प्रधान अपनी कविता के माध्यम से विश्व शांति का सर्वजनग्राह्य मार्ग दर्शाया है। लधुकथाकार श्रीमती शुक्ला चौधरी को पढ़ना अच्छा लगा। 'बेगम का फ़रमान' रचना के आधार पर डॉ॰ मोजेहेरूल हक़ का बहुत बढ़िया व्यंग्यकार हमारे सामने आ रहा है। ओम प्रकाश पाण्डेय 'मंजुल' कृत 'स्वाध्याय का अर्थ और महत्त्व ' में वस्तुतः लेखक का दार्शनिक चिंतन-मनन व्यक्त हुआ है। 'समीक्षा' अंतर्गत जो लेखन देखने-पढ़ने को मिला, वह समीक्ष्य कृतियों के बारे में यथेष्ट अवगति दे रहा है। श्री सिद्धेश्वर का यात्रा-वृतांत तथा संस्मरण दोनों ही रचनाएँ पठनीय एवं रोचक हैं। शेष स्तंभो के अंतर्गत भी हमें उपयोगी सामग्री मिल रही है।

संपर्क : डॉ॰ महेशचंद्र शर्मा, 'अभिवादन' 128-ए॰ श्याम पार्क (मेन), साहिबाबाद (ग़ाज़ियाबाद), 201005 उ॰प्र॰

'विचार दृष्टि' की टीम को साधुवाद

उप संपादक से अंक 31 भेंट स्वरूप प्राप्त हुआ। संपादकीय में हिंदी की वर्तमान स्थिति और भविष्य की ओर इशारा करते हुए अँग्रेज़ी के प्रति व्यामोह हमारा जो बना हुआ है, उसका बेबाक़ विश्लेषण हुआ है। कृष्ण कुमार की कहानी और शुक्ला चौधरी की लघु कथा में आज की स्थिति का पर्दा फ़ाश हुआ है। डॉ॰ मोज़ाहिरूल हक़ का 'बेगम का फ़रमान' के अतिरिक्त सभी स्तंभों के अतंर्गत हर प्रकार के पाठकों के लिए पठनीय सामग्री हैं। परमानंद 'दोषी' और कमलेश्वर के संस्मरण पढ़कर आभास होता है कि श्री सिद्धेश्वर उनके बहुत निकट रह चुके हैं।

पत्रिका नौ वर्षों से निरंतरता से प्रकाशित हो रही है, इसके लिए 'विचार दृष्टि' की टीम को मेरा साधुवाद।

संपर्क : सुखदेव नारायण, सी॰ के॰ आश्रम, बसंतपुर, वीरपुर, सुपौल (बिहार)

संपादकीय आँख खोलने वाला

अंक 31 का संपादकीय आँख खोलनेवाला है। नेपाल की रोमांचक यात्रा सरस भावभीनी है। 'सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार' पुस्तक में महत्त्वपूर्ण विचार हैं। आप जैसे बहुमुखी प्रतिभासंपन्न साहित्यकार का समुचित मूल्यांकन होना ही चाहिए। यह आपके कर्मतत्त्व का फल है कि भारत के समर्थ साहित्यकारों का सहयोग आपको मिल रहा है।

संपर्क : रमेश चंद्र शर्मा 'चंद्र', डी॰ 4, उदय हाऊसिंग सोसायटी, वैजलपुर, अहमदाबाद, 380051

अंक अच्छा है

अंक 31 अच्छा है। मुद्रण की शुद्धता को बनाए-बढ़ाए रखकर इसे और भी अच्छा बनाया जा सकता है। आपने मेरे लेख को तो लगाया ही है साथ-साथ लंबे पत्र को भी शामिल किया है। मैं आपको मन से नमन करता हूँ।

संपर्क : ओम प्रकाश पाण्डेय 'मंजुल', 'कामायनी', मो॰ काय स्थान, पूरनपुर पीलीभीत (उ॰प्र॰)

'दोषी' और कमलेश्वर पर अच्छी विवेचना

अंक 31 प्राप्त हुआ। पत्रिका उत्तरोत्तर प्रगति कर रही है। शानुर्रहमान तथा अब्दुल अहद साज़ की ग़ज़लें और अजय कुमार की कविता 'ख़ौफ़' चित्ताकर्षक हैं। 'शाकाहारी क्यों होना चाहिए', 'पूरब का ऑक्सफोर्ड पूणे' तथा भारत-नेपाल संस्कृतियाँ' अच्छे निबंध हैं। परमानंद 'दोषी' और कमलेश्वर पर अच्छी विवेचना है।

संपर्क : राजभवन सिंह, पोस्टल पार्क, बुद्ध नगर, पथ सं॰ 2, पटना- 800001

भारतीयता से ओत-प्रोत

अध्यनोपरांत 'विचार दृष्टि' की वैचारिक गंभीरता से अवगत हुआ। पत्रिका में राजनीति, साहित्य, कविता, व्यंग्य, समीक्षा, अध्यात्म और समाज इत्यादि विषयों पर बहुआयामी सामग्री का समायोजन और प्रकाशन पत्रिका की वैचारिक महत्ता को स्पष्ट करता है। श्रद्धांजलि स्तंभ के अंतर्गत परमानंद 'दोषी' और अन्य ख़बरें पढ़कर भावविह्वल हो गया। 'दोषी' जी और मैं 'धर्मायन' तथा अन्य पत्रिकाओं में साथ-साथ छपता था। भारतीयता से ओत-प्रोत विचारों की सफल वाहिका बनकर 'विचार दृष्टि' पत्रिका वैचारिक शून्यताओं की स्थिति को ख़त्म कर रही है।

संपर्क : डॉ॰ जनार्दन यादव नरपतगंज, अररिया- 854335

बेबाक टिप्पणी

'विचार दृष्टि' का अंक 31 नई रौशनी और नई आभा के साथ पाठकों के समक्ष आया है। विचारोत्तेजक विषयों पर बेबाक टिप्पणी इसकी संपादकीय की अन्यतम विशेषता है। पठनीय सामग्रियों से भरपूर 'विचार दृष्टि' सचमुच में पाठकों को चिंतन की एक नई दिशा देती है। परमानंद 'दोषी' पर लिखा अपका संस्मरण बड़ा ही हृदयस्पर्शी है।

संपर्क : डॉ॰ शिववंश पाण्डेय, 3/307, न्यू पाटलिपुत्र कॉलोनी, पटना

राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत

उर्दू अकादमी, बिहार के कार्यालय में 'विचार दृष्टि' का अंक 31 मुझे देखने का मौक़ा मिला। 'भाषायी ग़ुलामी से कब होगा मुक्त हमारा राष्ट्र' शीर्षक संपादकीय पढ़कर मैं अभिभूत हुई इसलिए कि इस संपादकीय ने अपनी राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति समर्पण का भाव व्यक्त कर यह सिद्ध कर दिया है कि यह सचमुच में राष्ट्रीय चेतना की वैचारिक पत्रिका है। सच मानिए, संपादकीय पढ़कर मेरी आँखें छलक पड़ीं, क्योंकि इसमें राष्ट्र के प्रति स्पष्ट चिंतन है। रेगिस्तान की तपती दुपहरिया में मानो मुझे पेड़ की छाया मिल गई हो। मैंने दूसरे ही दिन संपादक जी से संपर्क कर 'विचार दृष्टि' से जुड़ना लाज़मी समझा। मुझे विश्वास है राष्ट्रगान और राष्ट्रगीत पर मंत्रिमंडल और न्यायालय के आदेश के बाद प्रत्येक विद्यालयों में यह मंत्र बन गया है, जिसे पत्रिका के माध्यम से भारत के छात्रों को अवगत कराया जा सकता है। विश्वास है कि यह पत्रिका भारत के नागरिकों को भ्रष्टाचार, कदाचार, अपराधवृत्ति तथा आतंकवाद जैसी समस्याओं का समाधान निकालने में अपने साहस का परिचय देगी। मैं मानती हूँ कि एक ओर जहाँ राष्ट्रगीत शहीदों का साधक मात्र था, वहीं दूसरी ओर सैनिकों के लिए प्रेरणा का स्रोत भी। आज़ादी के बाद सत्ता पर आसीन राजनीतिज्ञों को भी इससे प्रेरणा मिली और वर्तमान दौर में 'विचार दृष्टि' जैसी पत्रिका भी इससे प्रेरणा प्राप्त कर देश को एकता के सूत्र में बाँधने का सफल प्रयास कर रही है। वस्तुत: आपने इसके माध्यम से राष्ट्रप्रेमियों को एक मंच पर लाकर उनकी लेखनी से इस देश को गौरवशाली बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। पत्रिका की संघर्षशीलता देखकर मुझे निम्न पंक्तियाँ याद आईं;

भारत है भगवान का, इससे किया जो प्यार
दानव-दस्यु जो मिलै, उनका हुआ बेड़ा पार

संपर्क : सुषमा भारती, रामकृष्ण कॉलोनी, आदर्श लेन, पटना-6

कश्मीर

○वीणा जैन

यार तुझे कहते हैं
इसीलिए ऐ कश्मीर तेरी चिंता में मरते हैं।

किसकी बुरी नज़र का निशाना बना तू
ऐ दुनिया के स्वंग सुंदर
भूल नहीं पाती मैं, तेरी धरती पर ली वह चंद साँसें
मुश्किल है अब दीदार तेरा कि आतंक बना
मेहमान तेरा।

फिर से बह रही बयार
धुंधली-धुंधली हो जिसमें महक केसर की
... जाए वह घुटन घुट रही जिसमें लहरें चिनार की
पुरखर हो जिसमें चश्मा शाही, निशात बाग
और चार मिनार की।

फिर से सजें, फूलों से शिकारे
गूँज उठे हाऊस बोट, फिर सैलानियों की आबादी में
पहलगाम, गुलमर्ग, शेषनाग और
सोनमर्ग के खुबसूरत निझार और
हिम-शिखरों की निशब्द ख़ूबसूरती
फिर दखें यह आँखें।

बंद हो गोलीबारी, कहीं न हो बम विस्फोट अब
मंदि-मस्जिद सब मिलकर ... गालीचे सुंदर
लद जाएँ बाग़ीचे सेब्रों, भर जाएँ दुकानें मेवों से
हर कश्मीरी पढ़ा-लिखा हो, कार्य जीवन सुंदर।

प्यार तुझे करते हैं
इसीलिए ऐ कश्मीर तेरी चिंता में मरते हैं।

संपर्क : बी॰-56, डायमंड डिस्ट्रिकट, एयरपोर्ट रोड, कोइल्ली, बैंगलूरू

"जंगे आज़ादी 1857 विशेषांक" के लिए इतिहासकारों / पत्रकारों / साहित्यकारों आदि से लेख / कविता अर्मंत्रित

'विचार दृष्टि' का 33 वाँ (अक्टूबर-दिसंबर, 2007) अंक **"जंगे आज़ादी 1857 विशेषांक"** होगा। इतिहासकारों / पत्रकारों / साहित्यकारों आदि से निम्नलिखित विषयों पर अधिकतम 2000 शब्दों में शोधपूर्ण आलेख / कविता आदि 20 अगस्त, 2007 तक संपादकीय कार्यालय, दिल्ली तथा पटना (आवास सं॰ सी॰-6, पथ सं॰-5, आर॰ ब्लॉक, पटना- 800001) के पते पर आमंत्रित किए जाते हैं।

01. 1857 का प्रथम स्वातंत्र्य समर
02. जंगे आज़ादी 1857 और बिहार
03. स्वतंत्रता संग्राम का सिपाही विद्रोह
04. 1857 का स्वतंत्रता संग्राम : साहित्यिक संदर्भ
05. वनवासियों में 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की चेतना
06. लोक साहित्य में 1857 का स्वतंत्रता संग्राम
07. स्वतंत्रता संग्राम का संक्षिप्त इतिहास
08. '1857 का भारतीय स्वातंत्र्य समर' और वीर सावरकर
09. 1857 का प्रथम मुक्ति संग्राम और दक्षिण भारत
10. जंगे आज़ादी 1857 : महिलाओं के संदर्भ में
11. 1857 की जंगे आज़ादी में कौमीएकता
12. भारतीय साहित्य में राष्ट्रीय स्वर
13. साहित्य व इतिहास में प्रतिबिंबित 1857 का दौर
14. वनवासियों में राष्ट्रीय चेतना
15. चिंगारी शोला बनी 1857 की जंगे आज़ादी
16. वतन पे मरने वालों का यही निशां होगा
17. रख दे कोई ज़रा-सी ख़ाके वतन कफ़न में
18. 1857 का स्वतंत्रता संगाम : मुक्ति की जंग
19. 1857 एक सिपाही विद्रोह या स्वातंत्र्य समर?
20. ख़ूब लड़ी मर्दानी वह नारी थी या झांसीवाली रानी थी
21. 1857 की क्रांति : हिंदू-मुस्लिम एकता की अटूट मिसाल
22. शहादत की साक्षी जंगे आज़ादी
23. 1857 के गुमनाम शहीद
24. 1857 की जंगे आज़ादी में पत्रकारों की भूमिका
25. 1857 की जंगे आज़ादी में छात्रों की भूमिका

इसके अतिरिक्त शीर्षकों के हेर-फेर के साथ 1857 के स्वतंत्रता संग्राम की पहली लड़ाई पर रचनाएँ भेजी जा सकती हैं।

टिप्पणी : 1. हस्तलिखित रचना सुस्पष्ट हो। अच्छा होगा, बेहतर कागज़ पर एक ओर हाशिया छोड़कर कम्प्यूटर कम्पोज आलेख की प्रथम प्रति (अपनी प्रति सुरक्षित रखकर) भेजें। 2. हस्ताक्षर और पत्राचार के पता (दूभाष संख्या सहित) के साथ रचना के मौलिक एवं अप्रकाशित होने की घोषणा आवश्यक है। 3. संक्षिप्त परिचय सहित पासपोर्ट साइज़ का एक फोटो भी संलग्न करें। 4. लेख में संदर्भ ग्रंथों का स्पष्ट उल्लेख किया जाए। 5. हिंदी / उर्दू / अँग्रेज़ी में प्रकाशित रचनाओं का हिंदी अनुवाद (मूल प्रति की छायाप्रति के साथ) स्वीकार्य है। 6. विलंब से प्रेषित रचनाओं पर विचार करना संभव नहीं है।

–डॉ॰ शाहिद जमील
उप संपादक

ज़रा इनकी भी सुनें

सन् 2050 से 2075 तक चांद पर व्यावसायिक प्रतिष्ठान तथा आदमी के घर बन सकते हैं

–राष्ट्रपति डॉ. ऐ.पी.जे. अब्दुल कलाम

चीन और भारत की सीमा विवाद को बात-चीत के जरिए सुलझाया जा सकता है।

–डॉ. मनमोहन सिंह

भारतीय लोकतंत्र की साठवीं वर्षगांठ की ऐतिहासिक घड़ी में भाजपा राजनीतिक गरिमा, सामाजिक प्रतिबद्धता या नैतिकता दिखाने में विफल रही है।

–काँग्रेस प्रवक्ता जयंती नटराजन

तालिबान का फिर से उभरना एक नई चुनौती बन गया है। तालिबान के संदर्भ में तुष्टीकरण की नीति अपनाने से उनका हौसला और बढ़ेगा तथा लोकतांत्रिक और बहुसांस्कृतिक प्रणाली पर हमला जारी रहेगा।

–रक्षामंत्री, प्रणव मुखर्जी

बिहार सरकार पिछले दो वर्षों से बी॰पी॰एल॰ सूची के चक्कर में फंसी है। ख़जाना में पैसा भरा है और ग़रीब भूखों मर रहे हैं। **–केंद्रीय ग्रामीण मंत्री, डॉ॰ रघुवंश प्रसाद सिंह**

सितंबर 2007 में मैक्सिको सीटी में होने वाली विश्व शतरंज चैम्पियनशिप में खिलाड़ी सभी ख़िताबों के दावेदार हैं।

– दुनिया के नंबर एक खिलाड़ी **विश्वनाथ आनंद**

भारत में यौन शिक्षा संस्कृति और सभ्यता पर विदेशी कंपनियों का हमला है।

–स्तंभकार हृदयनारायण दीक्षित

लाल मस्जिद के उलेमा सरकार की नरमी को उसकी कमजोरी समझ रहे हैं।

–पाक राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ

देश में बढ़ती धर्मिकता या आदमी की बीमार मनोवृत्ति

कहा जाता है कि इस देश की सौ करोड़ से अधिक आबादी में 40 करोड़ से ज्यादा लोग बेहद धर्म-परायण हैं और 50 करोड़ से ज्यादा लोग धार्मिकता की तरफ कुछ न कुछ झुकाव रखते हैं यानी धर्म-कर्म में विश्वास रखने वालों की संख्या 90 करोड़ से ज्यादा है। इसकी संपुष्टि इस बात से भी होती है कि धर्माधिकारियों, सन्यासियों तथा धर्म के ठिकेदारों द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों में आयोजित धर्म सम्मेलनों, प्रवचनों, उपदेशों आदि में श्रद्धालुओं एवं भक्तों की संख्या हजारों में नहीं, बल्कि लाखों में होती है। यही नहीं, पर्व-त्योहारों, धार्मिक अनुष्ठानों तथा कुछ विशेष तिथियों एवं अवसरों पर वैष्णव देवी, देवघर, हरमंदिर, तिरूपति, म.प्र. के राजिम कुंभ, इलाहाबाद कुंभ, महाबालेश्वरम् 'कुंभकोणम' मक्का-मदीना, केदारनाथ, बद्रीनाथ जैसे धार्मिक स्थलों पर जाकर लाखों की तादाद में इस देश के लोग पूजा-अर्चना करते हैं। यह इस बात का द्योतक है कि यहाँ के लोग अधिक से अधिक संख्या में धार्मिक होते जा रहे हैं।

धर्म की सामान्य परिभाषा है -धारयते इति धर्मः अर्थात् जो समाज धारण करता है, बेहतर ढंग से चलाए रखता है वह धर्म है। यानी बुराइयों से दूर रहना, संवेदनशील होना, परोपकारी भाव रखना, दया, धर्म, क्षमा, करुणा, प्रेम जैसी प्रवृत्तियाँ बढ़ रही है? और यदि सद्प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं तो प्रश्न उठता है कि घर से बाहर कदम रखते ही हर तरफ दुष्प्रवृत्तियाँ ही क्यों पांव पसारे दिखती हैं? यह कैसी धार्मिकता है कि मंदिर में घंटा बजाते और मस्जिद में पाँचों वक्त नमाज़ अदा करते लोग भी व्यवहार की दुनिया में एक दूसरे के खिलाफ नफ़रतों का समंदर लिए फिरते हैं? बढ़ती हुई धार्मिकता का क्या लाभ, जबकि समाज में भले आदमी का जीना, मुश्किल होता जा रहा है? उफनती धार्मिकता के इस दौर में जिंदगी कहीं ज्यादा तनावग्रस्त हो गई है और समाज निरंतर असुरक्षा में सांस ले रहा है। आम लोगों को परिस्थितियों से जूझने या ठंडे दिमाग से विचार करने की बजाय मर जाने की तरफ धकेला है। तेजी से दौलत कमाने की होड़ व भोग-विलास की संस्कृति लोगों में अवसाद व आत्महत्या की प्रवृत्ति बढ़ा रही है। जल्दी से जल्दी और ज्यादा से ज्यादा पैसा कमाने का लोभ और ऐशोआराम का जीवन इन्हें इस कदर आकृष्ट करता है कि उनकी सोचने-समझने की क्षमता पर जैसे पर्दा पड़ जाता है। कठिन परिश्रम करने वालों की चर्चा करने की बजाय अब लोग अधिक धन कमाने वालों से प्रभावित हो उन्हें ही अपना आदर्श मानते अधिक दिखते हैं और लोगों में तर्क एवं विवेक की क्षमता को कुंद करने के साथ ही अय्यासी, विलासिता और पश्चिमी संस्कृति को बढ़ावा दे रही है, जिसके परिणामस्वरूप लोगों में मानसिक तनाव, कुंठा व अवसाद उत्पन्न हो रहे हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ग्लैमर और चकाचौंध जब किसी व्यक्ति की तर्क क्षमता और सोचने-समझने की शक्ति पर हावी हो जाती है, तो वह तेजी से नकारात्मकता की तरफ बढ़ने लगता है। इसी नकारात्मकता का परिणाम है कि एक स्त्री दिन-दोपहर और भरे बाजार में भी अकेले निकले तो अनगिनत शिकारी निगाहें उसे घूरने लगती हैं। यह कैसा धार्मिक वातावरण है जिसमें निठारी जैसी वीभत्स घटनाएँ कहीं ज्यादा आसानी से संभव होने लगी है? क्या यही धर्मपरायणता है कि हम हिंसा, बलात्कार, भ्रष्टाचार में दिन-दूनी रात-चौगुनी प्रगति करें? बढ़ती आत्महत्या की घटनाएँ इस बात का ही संकेत देती हैं कि बेतहाशा बढ़ती जनसंख्या की अपार भीड़ में भी आदमी इतना तन्हा हो गया है कि उसे अपने दुःख-दर्द में शरीक होने वाला कोई नहीं मिलता! सिकुड़ते परिवार और काम के बोझ के चलते कमजोर पड़ता दोस्ती का दायरा तथा टूटते रिश्ते एकाकीपन को बढ़ाते जा रहे हैं। मन की बात कहने-सुनने वाला कोई इर्द-गिर्द नजर नहीं आता। घबराहट में उदासीनता तेजी से दिमाग को जकड़ती जाती है। समूचे परिवार को मारकर खुद भी मर जाने वाली खबरें हमेशा यह बता रही हैं कि उनमें से अधिकतर आर्थिक तंगी और मानसिक तनाव के शिकार थे। यह बढ़ती धार्मिकता है या आदमी को आत्मकेंद्रीत करती स्वार्थपरता की सीमाएँ लाँघती एक बीमार मनोवृत्ति, जो आँखों के सामने हो रहे अत्याचारों का भी मुखर प्रतिरोध करने से कतराती है।

इससे ऐसा प्रतीत होता है कि देश में तूफान मारती धार्मिकता काफी हद तक नकली किस्म की है। आखिर तभी तो धार्मिक प्रवचनों और उपदेशों का असर भी श्रद्धालुओं पर नहीं देखने को मिलता है। लाखों की तादाद में धार्मिक स्थलों पर पूजा-अर्चना कर जब लोग पुनः अपने-अपने घर वापस लौटते हैं तो वैसी ही दुष्प्रवृत्तियों से वे घिरे पाए जाते हैं। इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि पूजा-अर्चना से न तो उनका दिल बदला और न ही उनकी मानसिकता में कोई बदलाव आया, यानी उनमें अधर्म तत्त्व तब भी विद्यमान रहे। अधर्म इसलिए कि इसकी प्रवृत्ति धर्म के उदात्त भावों के विपरीत है। मसलन यह धार्मिकता सद्वृत्तियों के उभार का परिणाम नहीं, इस दौर के तनावों और बढ़ते असुरक्षा भाव का प्रतिफल है। दरअसल इस धार्मिकता में विपरीत परिस्थितियों के सामने तनकर खड़ा होने का संघर्ष भाव नहीं, बल्कि पलायन मनोवृत्ति है। सच तो यह है कि यह धर्मपरायणता समाज-निर्माण की प्रेरणा-स्रोत बनने की बजाए बुराइयों के खिलाफ संघर्ष की धार को कुंद करती है। यह धार्मिकता गैर-जिम्मेदार आदतों के प्रति जवाबदेही से मुँह छिपाने का बहाना है। यह धार्मिकता अपने-अपने निजी या जातीय जगन्नियंता गढ़ती है और उन जगन्नियंताओं अथवा भगवानों से मुसीबतों से उबार लेने की मिन्नतें करती है, ठीक वैसे ही जैसे रेत में सिर छिपाकर शुतुरमुर्ग खतरे से बच जाने का भ्रम पालता है।

वर्तमान दौर की धार्मिकता का अधर्म और उच्छृंखलता तो तब और देखने को मिलती है जब आए दिन कस्बों, नगरों और महानगरों में आयोजित देवी जागरणों, भिन्न-भिन्न अवसरों पर देवी-देवताओं के पूजा-पंडालों में होने वाले नाच-गानों की अश्लीलता और मूर्ति-विसर्जनों के दौरान दारू पीकर हुड़दंग करती, लड़कियों पर फब्तियाँ कसती, मुर्गे की दावत उड़ाती और धर्म की नई व्याख्या गढ़ती इस दौर के युवाओं की टोलियाँ गुजरती हैं। वस्तुत: आज हम जिस धार्मिकता और नैतिक पतन के वीभत्स रूपों से गुजर रहे हैं उसकी चुनौतियों से सामना करने के लिए अब सच्चा धर्म चाहिए। वह धर्म, जो सचुमुच समाज को धारण करता है, बेहतर दुनिया बनाने की मनोभावनाओं का उत्प्रेरक है। आज उस धार्मिकता की आवश्यकता है, जो दीन-दुखियों व असहायों का सहारा बनने की मानवीयता देता हो। आज वैसे धर्म की जरूरत है, जो टूटते समाज को जोड़ने का काम करे, देश-व्यापी शोषण, भ्रष्टाचार, स्वार्थपरता और निजी जीवन के तनावों की जड़ों की पहचान कराकर उनसे मुक्ति दिलाए। अन्यथा कुंभ जैसे मेलों में डुबकी लगाने वालों की बढ़ती तादाद धर्म की व्यावहारिकता और सार्थकता को भी डुबोने से बाज नहीं आएगी।

आज धार्मिक आडंबर हमारी जीवन-शैली बन गए हैं। हम प्रतिदिन किसी न किसी धार्मिक आयोजन में सहभागिता निभाते हैं। वहाँ हम ऐसा अभिनय करते हैं , जैसे कि हम एक अच्छे इंसान हैं जिसे अपने आस-पड़ोस , समाज-देश की बहुत चिंता है। हम देश के प्रत्येक कानून का बखूबी आदर करते हैं और हमने स्वयं में पूरी तरह से सुधार कर लिया है। मगर सच तो यह है कि हम पूरी तरह से दिखावे की जिंदगी जी रहे हैं, और बाजार-संस्कृति के अधीन होकर सामाजिकता, नैतिकता, देश-प्रेम, पड़ोस-प्रेम, परोपकार, कर्त्तव्यपरायणता, ईमानदारी, धैर्य, संयम, सहनशीलता सहित जीवन की अमूल्य निधियों को तिलांजलि दे चुके हैं। हमें धर्म के अर्थ को समझते हुए दिखावे के आडंबरों में समय बर्बाद नहीं करना चाहिए और खुद में बदलाव लाना चाहिए।

दरअसल धर्म से जुड़े आज जो लोग हैं धर्म के ठिकेदार बन अपनी दुकानें खोले बैठे हैं, वे धर्म को आधार मानकर लाभ पाने की इच्छा रखते हैं और धर्म की आड़ में तरह-तरह के हथकंडे अपनाकर न केवल लोगों में अँध-विश्वास और पाखंड का वातावरण बनाते हैं, बल्कि दीन-दुखियों और गरीबों को लूटते तथा दूराचार करते हैं। आखिर तभी तो यह सुनने को मिलता है कि अनेक धर्मोपदेशकों के पास अकूत संपत्ति है, कई लोगों के पास अनेक कल-कारखाने हैं और धर्म की आड़ में वे ऐश-आराम सुख-सुविधा की सभी वस्तुएँ अर्जित कर सत्ताधारियों पर कब्जा किए बैठे हैं। धर्म के असली सिद्धांत- सादगी, संयम और सदाचार की जीवन शैली से उनका कोई मतलब नहीं, भले ही वे कितने प्रवचन व उपदेश लाखों असहाय व दीन-हीन लोगों को परोस रहे हों। सच तो यह है कि धर्म कोई ऐसा बल्ब नहीं कि स्विच दबाते ही जल जाए। यदि जीवन भर धर्म की इस ज्योति में जगमगाते रहना है, तो सहज, सरल और संयमित होकर निर्मल चित्त से आँखें खोलकर धर्म की असली भावना को पोसना होगा।

भारतीय समाज एक ऐसा समाज है जिसके धर्म में सहनशीलता एक जीवन पद्धति है, मगर मजहबी आधार पर वीभत्स उपद्रव भी उसे प्रभावित करते हैं जिसके परिणामस्वरूप समाज के लोग मर्माहत होते हैं। आपको याद होगा अहमदाबाद के एक मंदिर में एक पुजारी ने अपनी दत्तक मुसलिम पुत्री की शादी संपन्न कराई थी। यह विवाह मुसलिम रीति से संपन्न हुआ था और मंदिर के भीतर नमाज भी पढ़ी गई थी। वर का पिता इतना प्रभावित हुआ था कि उसने दो बेटियों के लिए वर खोजने का अनुरोध भी पुजारी से कर दिया था, मगर प्रतिक्रियावादियों तथा कट्टरपंथियों ने इस पर भी हाय-तौबा मचाया। इस प्रकार हम देखते हैं कि बहुलवादी छवि समय-समय पर खंडित होती रहती है और घृणा का धुँआ अभी भी सांप्रदायिक दंगों के रूप में अपना आभास कराता रहता है। यह कैसी धार्मिकता है?

इसके अतिरिक्त एक तरफ जहाँ धार्मिकता बढ़ रही है, तो वहीं दूसरी तरफ धर्मांतरण का खटराग काफी सिर दर्द बन रहा है। दलित-पिछड़ों को यह लग रहा है कि उन्हें सामाजिक और सांस्कृतिक बराबरी नहीं मिल पा रही है। इसलिए उन्हें निरंतर अपमान से मुक्त होकर कुछ सम्मानजनक जीवन जीने का मौका तो मिलेगा। ऐसी परिस्थिति में प्रतिक्रियावादी एवं कट्टरपंथी ताकतों को रोकने के लिए एक तय मानसिकता के साथ समाज के सभी धर्मों के शुभचिंतक लोगों को आगे आने की जरूरत है। यह समय की माँग है, तभी सुदंर, सबल और उज्ज्वल भारत का निर्माण संभव है। यह बात ठीक है कि हमारा यह देश बहुधर्मी है और यहाँ गंगा, जमुना, कृष्णा, कावेरी तथा सतलज जैसी धार्मिक आस्था की प्रतीक पवित्र नदियाँ बहती हैं। सचमुच हमें इन पर गर्व है, लेकिन ये अपने साथ गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा और बीमार मनोवृत्ति को बहा नहीं ले जाएँगी। इसके लिए हमें ही कदम उठाने होंगे। इस कदम में आज ध र्म को आधुनिक प्रौद्योगिकी के परिप्रेक्ष्य में देखने की जरूरत है ताकि नई पीढ़ी रूढ़िवादी धार्मिकता के लिए अपनी आँखें खोले। आज की नई पीढ़ी देश पर मर मिटने की बात तो करती है, मगर मेरी माने तो देश पर मर-मिटने से पहले हम बात करें ढ़ग से जीने की, खुली हवा में सांस लेने की, आपसी भाईचारे और नैतिकता की तथा देश की प्रगति की और यह तभी संभव है जब छद्म धार्मिकता को मिटाकर आपसी मेल-जोल, सहमति और सद्भाव का वातावरण बनाएँ। धर्म पर चलकर दलितों, दबे-कुचलों, दीन-दुखियों तथा असहायों की सहायता करें और देश को आगे बढ़ाने का प्रयास करें। यही हमारा सच्चा धर्म है और यही है हमारा राष्ट्रीय कर्त्तव्य। इसी से हम अपने आत्म गौरव और राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा कर सकते हैं।

Tele 0612-2352480

THE PEOPLE'S CO-OPERATIVE HOUSE CONSTRUCTION SOCIETY LTD.

KANKERBAGH, PATNA-800020.

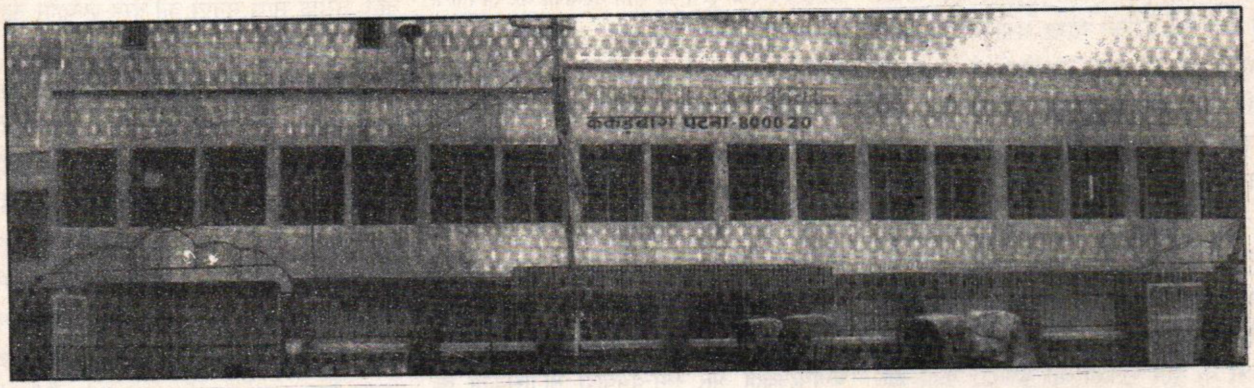

HIGHLIGHTS:

1. For members of lower & middle income group of people this society is said to be one of the largest co-operative house construction societies in Asia.
2. In the first phase 131.12 acres of land acquired by Government of Bihar were handed over to this society.
3. The society has got an opportunity to attract 1730 members from lower income group of people.
4. In all 1600 plots were bifurcated in planning out of which 10 plots were reserved for community hall, office building, godown and four-storied building for common utilities.
5. 1400 houses have so far been constructed by the members.
6. 500 members have been given housing loan through this society.
7. Boundary walls in 15 parks have already been constructed by the society.
8. In most of the sectors metalled & cemented roads have also been construcred.
9. Efforts are being made to improve the drainage system, to have plantation and lighting facilities.
10. In the second phase 7 acres of land have been purchased at Jaganpura village in which six houses have been constructed so far.
11. Out of 96 plots 95 plots have already been allotted to the members and one plot has been reserved for common utilities.
12. The society makes available its community hall to the members on priority basis for the marriage ceremony of their sons & daughters at half of the preseribed charges.
13. As far as possible the society tries to provide street light, maintain roads, clean manholes, construct park and other development activities.
14. All those members who have not filled up their nominee forms as yet are requested to deposit the forms duly filled in after getting the forms from the office of the society.

With regards to the members.

L.P.K. Rajgrihar	Sidheshwar Prasad	Prof. M.P. Sinha
Chairman	Vice Chairman	Secrectary

सूखती संवेदना और मुरझाता राष्ट्र

○ डॉ० राकेश कुमार सिंह

उग्र भीड़ ने उसका आठ माह का गर्भ तलवार से काटकर सड़क पर निकाल फेंका। वह चीखी, लेकिन मानवीय संवेदना को जगा नहीं पाई उसकी चीख, क्यों? 'बेटा बेटा' पुकारती बूढ़ी औरत के जननांगनों से खिलवाड़ करती दंभी मानसिकता को माँ के रिश्ते की पवित्रता का एहसास नहीं होता, क्यों! निरीह बहन-बेटियों आँसुओं के पयस्विनी विगलित नहीं करती; स्तनों को काट-काटकर आँगन में फेंकने वाले पाषाण ननदयों को क्यों!!! आखिर क्यों!!! क्या हो गया है महावीर, गौतम और गाँधी की अहिंसा को! रुक क्यों गई है महान अकबर के दीने एलाही की बयार!! कहाँ खो गई है इस पवित्र भारत भूमि की सहिष्णुता और सननदयता! ये प्रश्न हिंदू से नहीं; मुसलमान से नहीं, इंसानियत से है, संपूर्ण मानव जाति से हैं। कौमें इंसानियत से बड़ी नहीं होतीं। हम कौन थे क्या हो गए हैं और क्या होंगे अभी? आवश्यकता है इस चिंतन की जिससे राष्ट्र की ज़मीन से जुड़ी परस्पर स्नेह, सद्भाव, समता, करुणा और सहिष्णुता की संवेदना की जड़ों को सूखने से बचाया जा सके।

संवेदनाएँ भारत भूमि की अनेकता में एकता संस्कारित करने का अहस्र स्रोत्त हैं। यहाँ विभिन्न धर्म हैं, विभिन्न वर्ण हैं, विभिन्न वर्ग हैं, विभिन्न जातियाँ हैं, विभिन्न जलवायु के विभिन्न प्रांत हैं। यह संस्कृति बहुल राष्ट्र है। लेकिन कश्मीर से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक यह जिस स्नेह से, जिस संवेदना से जुड़ा है उसकी जड़ें हज़ारों वर्ष पुरानी हैं। यह सहानुभूति से बड़ी, बहुत बड़ी है। इसका स्वरूप बहुत व्यापक है। प्रेम से, करुणा से, समता से, ममता से, सहिष्णुता से यह मानव मानव को निकट लाती है। राष्ट्र के विकास का यह प्राण है। इस देश की साझी संस्कृति का आधार है यह संवेदना। इस संवेदना की जीवंतता की वजह से ही सैकड़ों वर्षों से चली आ रही विभिन्न विचार पद्धतियों को मानने वाले चिंतकों और विचारकों के माध्यम से वैचारिक आदान-प्रदान से हम सब भारतवासी सांस्कृतिक स्तर पर एक दूसरे के निकट आए हैं। एक संस्कृति पनपी है। इस आदान- प्रदान ने हमें भाषाएँ दी हैं, जीवन का मार्गदर्शक साहित्य दिया है। अनेक रास्तों पर साझा जीवन दृष्टि दी है। हमने एक दूसरे के रीति-रिवाजों को अपनाया है। लेकिन आज हमें कुछ लोगों के दिलों में एक दूसरे के प्रति आशंका व अविश्वास पैदा हो गया है और हम घृणा से अमानवीय शैतानी हथकंडों के स्तर तक उतर आए हैं। दरअसल, 'सारे जहाँ से अच्छा, हिंदोस्ताँ हमारा' और 'हिंदू, मुस्लिम, सिख, ईसाई, आपस में हैं भाई-भाई' के राष्ट्रीय आंदोलन की महान उदात्त परंपराएँ तेज़ी के साथ ख़त्म होती जा रही हैं, ख़त्म की जा रही हैं। यह सब धार्मिक सहिष्णुता, धर्मनिरपेक्षता और समन्वयवादी मानसिकता के ख़िलाफ़ स्वार्थपूर्ण एक साज़िश, सुनियोजित साज़िश है।

'मज़हब नहीं सिखाता, आपस में बैर रखना' इक़बाल ने लिखा, ठीक लिखा। उन्होंने लिखा सननदयता से सिक्त होकर, भाईचारे की गहराई में डूबकर। डूबने के भय से जो सागर में उतरेगा ही नहीं, उसे क्यों मोती मिलेंगे। दोष मोतियों का नहीं, मानसिकता का है। मोती पाने के लिए गहरे पानी में पैठना ही पड़ता है। बाह्याडंबर किसी भी धर्म की सच्चाई नहीं। यह धर्म की ओट में एक व्यवसाय है। यह व्यवसाय ही वह विकार है जो व्यक्ति को धर्म के मूल उद्देश्य से दूर कर देता है। इन धर्माडंबरों का विरोध संत कबीर ने किया, गुरु नानक ने किया। तमाम हिंदू, मुस्लिम विचारकों ने किया। आज कबीर से, गुरु नानक से बड़ा धार्मिक कौन है? बाहर से अलग-अलग दिखाई देने वाले सभी धर्म वास्तव में अंदर से मानवता के विकास के उद्देश्य को ही पूरा करते हैं। गुरु नानक स्पष्ट घोषणा करते हैं - ''घटी सभनी सहु बसै, सह बिन घट न कोई।'' बाईबल के न्यू टेस्टामेंट में इसी सत्य को इस प्रकार उद्घटित किया गया है -''ईश्वर प्रेम है और उसका शब्द वह प्रकाश है जो प्रत्येक मनुष्य को प्रकाशित करता है। यह भी उसकी इच्छा है कि सब मनुष्यों की रक्षा हो और सत्य का ज्ञान प्राप्त करें।'' आत्मन प्रतिकूलानी परेषं न समाचरेत- स्वंय को अनुचित लगने वाला व्यवहार दूसरों के लिए न करो। यह है सनातन धर्म का सत्य। सोचिए, कहाँ-कहाँ गया है, जो मनुष्य हमारे धर्म को नहीं मानता वह मनुष्य नहीं, उसके साथ मनुष्य की तरह व्यवहार नहीं करना चाहिए।

कोई धर्म घृणा, विद्वेष, संकीर्णता, असहिष्णुता, शोषण, उत्पीड़न का संदेश नहीं देता। सभी धर्मों में मानव मात्र की भलाई की व्यवस्था है। सभी धर्मों का सार विश्वबंधुत्व की सीढ़ियों पर खड़ा है। आज हमें धर्म के इस मर्म को पहचानने की आवश्यकता है। इसमें पैदा हो जाने वाले तमाम विकारों के परिष्कार की आवश्यकता है। कितना अच्छा होता यदि कृतज्ञ राष्ट्र अपने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी के संदेशों को अपने जीवन में उतार पाता - सारे धर्म मूल में एक ही हैं, यद्यपि वे पेड़ के पत्तों की तरह विस्तार और बाह्य रूप से एक दूसरे से अलग हैं। कोई भी दो पत्ते एक से नहीं होते फिर भी आपस में लड़ते नहीं, बल्कि हवा के साथ-साथ खुशी से नाचते हैं और मिलकर मधुर संगीत बनाते हैं।

राष्ट्रीयता के संदेश का व्यावहारिक रूप भी है- 'प्राणनाथ का मंदिर'। एक श्री कृष्ण की मधुरिम मूर्ति, तो दूसरी ओर कुरान की आयतें खुदी हुईं। कुरान-पुरान दोनों पर समान चर्चा-जीवन में उल्लास, उमंग, नई चेतना, नई समझ। बहुधर्मी देश में मानवीय संवेदना की नई विस्तृत होती ज़मीन। वास्तव में किसी धर्म विशेष में आस्था रखना और निजी जीवन में ईश्वर से साक्षात्कार करने के लिए उसकी उपासना विधि अपनाना धार्मिकता है। लेकिन धर्म के आधार पर व्यक्तियों का मूल्यांकन करना, उनमें अपने व्यवहार का तरीक़ा निर्धारित करना सांप्रदायिकता है।' किसी दंगे-फ़साद की जड़ धर्म नहीं, यह सांप्रदायिकता ही बनाती है। सांप्रदायिकता का आधार घृणा है, विद्वेष है, संकीर्णता है, अलगाव है, असहिष्णुता है। इसकी जड़ें पुनरुत्थानवाद से खाद-पानी लेती है। यह पुनरुत्थानवाद ऐलोपैथिक औषधि की तरह पुनर्जागरण का साइड अफैक्ट है।

पुनर्जागरण काल में स्वभावतः अतीत

की पुनर्व्याख्या हुई। उसे महिमामंडित किया गया। लेकिन अतीत को महिमामंडित करने वाले लोग अपनी पुनर्व्याख्या से देश के वर्तमान और भविष्य के निर्माण के लिए अपेक्षित ताक़त संचित करने की बजाए अपने अतीत को ही वापस लौटा लेने की मानसिकता के शिकार हो गए। 'अतीत के धर्म और संस्कृति को उसे हिंदू धर्म, वैदिक धर्म, सनातन धर्म कुछ भी कहा जाए , आर्य संस्कृति, हिंदू संस्कृति कोई भी नाम दिया जाए, एक बहुभाषी अनेक धर्मोंवाले देश में पुन: प्रतिष्ठित करने का प्रयास करना अंततः सांप्रदागिकता को पुष्ट करने में सहायक बना।' यह सांप्रदायिकता एक धर्म तक सीमित हो, ऐसा नहीं है और इसके शिकार भी वे लोग होते हैं, जो शांति से रहना चाहते हैं। इन साधारण जनों को ही सर्वाधिक भड़काया जाता है और मारकाट भी सबसे ज्यादा इन्हीं की होती है। लेकिन इससे समूचे राष्ट्र की प्रगति में बाधा पड़ती है। इस सांप्रदायिकता से जूझने और उसे पीछे ढकेलने में यदि हम कामयाब होते आए हैं, तो केवल इसलिए कि हम भारतीयों के दिलों में मानवीय संवेदना का धक-धक करना कभी भी नहीं हुआ है।

इतिहास के पन्ने-पन्ने पर लिखी है हिंदू-मुस्लिम सद्भाव, सहिष्णुता और भाईचारे की कहानियाँ। इन कहानियों के संप्रेष्य से ऐसी संवेदना की पुष्टि होती है जो राष्ट्र के लिए खुशनुमा माहौल तैयार करने की भरपूर ताक़त देती है। आओ! इतिहास के वातायन से झाँककर राष्ट्रीय मूल्यों को पहचानें- मुग़ल सम्राट औरंगज़ेब को जीवन भर झकझोरते रहने वाले छत्रपति शिवाजी के सामने जीत के सामान के साथ मुस्लिम सूबेदार की पूत्री गौहर बानो खड़ी है, उसे होने वाले कष्ट के लिए क्षमा माँगते हुए वे उसे ससम्मान उसके परिवार के पास भेजने का आदेश दे रहे हैं। ... मुस्लिम सम्राट हुमायूँ हिंदू बहन की राखी की लाज बचाने के लिए राजपूत रानी कर्मवती के दुश्मनों को खदेड़ने के लिए युद्ध का डंका बजाते हुए निकल पड़े हैं। ... दीने इलाही चलाने वाले राजपूत रानी जोधाबाई के पति अकबर से बार-बार टकराने वाले महाराणा प्रताप सिंह की सेना के एक भाग का संचालन हकीम ख़ाँ सूरी रहे हैं। ... समूचे राष्ट्र की आज़ादी के लिए तलवार उठाने वाले टीपू सुल्तान अपने हिंदू सेनापति और मंत्री से परामर्श कर रहे हैं। ... छत्रपति शिवाजी अपने मुंशी मुल्ला हैदर से पत्र लिखवा रहे हैं। ... मौज़ापुर के इब्राहीम आदिल शाह की सेना के पचास हज़ार हिंदू सैनिक कर्त्तव्य का पालन कर रहे हैं। ... खानवा के युद्ध में राणा संग्राम सिंह की ओर से मुसलमान के विरूद्ध महमूद लोधी युद्ध कर रहा है। एक हज़ार मुसलमान घुड़सवार राणा संग्राम सिंह का साथ दे रहे हैं। ... वेदों, उपनिषदों का अध्ययन करते शाहजहाँ के बड़े बेटे दाराशिकोह हिंदू-मुस्लिम संस्कृति का समन्वय करते हुए अपनी पुस्तक 'मजमा-उल-वइराइन' लिख रहे हैं। ... देखो! बार-बार देखो! हिंदू-मुसलमान में

परस्पर सहृदयता, सम्मान, प्रेम और विश्वास दिखाई देता है। इतिहास के ये ऐसे उजले पृष्ठ हैं जिनको पढ़कर देश मज़बूत बनेगा, विकास करेगा। मत अनदेखा करो इन पृष्ठों को। इनमें एकता की, सद्भाव की, सहिष्णुता की जान है। मत सेंको सांप्रदायिक स्वार्थ की रोटियाँ, इतिहास के साथ खिलवाड़ करके। मत ठेस पहुँचाओ देश की साझा संस्कृति को। मत ठेस पहुँचाओ मियाँ रसख़ान के हृदय में कृष्ण के प्रति उमड़ती श्रद्धा को- 'मानुष हों तो वही रसखान बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन', मत ठुकराओ कृष्ण के प्रति ताल के समर्पण को- 'नंद के कुमार कुरबान तेरी सूरत पे हैं, तो मुग़लानी हिंदुआनीं हवै रहूँगी मैं।'

इतिहास की तरह ही भारतीय सामाजिक जीवन में भी स्नेह, सौहार्द और सद्भावना के दृश्य मिलते हैं। पूर्वाग्रह से मुक्त होकर देखें, समूची दुनिया आपको अपना कुटुंब-सा प्रतीत होगी। 'सड़क पर बुरक़ा उतार कर थैले में रखा, साड़ी ब्लाउज में सज गई युवतियाँ। कुछ दूरी पर मंदिर। दोनों ने दीप जलाए, प्रसाद ग्रहण किया, माथा टेका। लौटीं तो फिर से सिर से पाँव तक ढके, बुरक़ा ओढ़े। मुसलमानों की मज़ारों पर चादरें चढ़ाई जा रही हैं। चढ़ाने वालों में हिंदुओं की तादाद कम नहीं है। जैन साहब के घर में दुल्हन बनी मेहरून्निसा बैठी है तो क्रिश्चन नीलोफ़र त्रिपाठी साहब के घर में ब्राह्मणी संस्कारों से बँधी राधा-कृष्ण की आरती गा रही है। हिंदू बालाएँ ईद की सेवइयाँ बना रही हैं, गिरजाघरों में प्रार्थना कर रही हैं। नवदुर्गों में करीना बुर्क़ा ओढ़े माँ दुर्गा की पूजा कर रही हैं। आस्था एक ही है, मुसलमान उन्हें जाहरपीर कहते हैं और हिंदू उन्हें जाहार वीर कहते हैं। परिवार एक ही है, एक भाई राम सेवक है, तो दूसरा रहमान है। एक बहन कुसुम है, तो दूसरी ज़रीना है। ज़रीना का पति राम संजीवन राम को मानता है तो कुसुम का पति ख़ुदा को। एक ही घर में मंदिर और मस्जिद दोनों। सामंजस्य और समन्वय की यह गंगा गंगोत्री से गंगासागर तक बहती है। फिर, मंदिर में आग क्यों लगाई जाती है? क्यों गिरजाघर उजाड़े जाते हैं? हिंदू मुसलमान के खून का प्यासा क्यों है? मुसलमान हिंदू परिवार को बरबाद क्यों कर रहा है? मत कहो इन्हें हिंदू, मत कहो इन्हें मुसलमान, आततइयों की कोई जाति नहीं होती, कोई धर्म नहीं होता। क्या उत्तर है अहमदाबाद के रफ़ीक़ चाचा की पुत्री के प्रश्नों का। वह पूछती है- 'दंगाइयों ने क़त्ल किया उसके पिता का? इसलिए कि वह मुसलमान थे। फिर मेरे पति का क्यों क़त्ल किया इन दंगाइयों ने, वह तो मुसलमान नहीं थे, हिंदू थे। दरअसल, आतताइयों का धर्म में विश्वास नहीं होता।' वे संवेदनशून्य उन्मत्त होते हैं, निठल्ले और निकम्मे होते हैं। अन्यथा हमारे अपने देशवासी की लाखों की संख्या में अरब देशों, अमेरिका, यूरोप के अन्य देशों तक अनेकानेक देशों में जाकर बस गए हैं और यह सिलसिला बराबर बना रहता है। यह आज के युग के जीवनयापन का स्वाभाविक अंग है। इससे शायद सबसे अधिक इस दृष्टि को बल मिलता है कि अलग-अलग भाषाओं के बोलने वाले, अलग-अलग धर्मों की विचारधाराओं में विश्वास रखने वाले लोग काम-काजी स्तर पर मिलजुलकर रह सकते हैं।

अँग्रेज़ और मुसलमानों से पहले देश में तमाम लोग बाहर से आए, फिर वापस लौटकर नहीं गए। यहीं बस गए। शक आए, कुषाण आए, हूण और मंगोल आए, कहाँ गए? हमसब लोगों के बीच ही हैं। पर आज कौन ऐसा है जो कह सके कि हम हूणों के वंशज हैं, मंगोलों के वंशज हैं। ''इतिहास इस बात का साक्षी है कि प्रारंभ से लेकर अब तक इस देश में आने वाली, बसने वाली और घुमक्कड़ जातियों के बीच आर्य और अनार्य के बीच रक्त संबंध स्थापित होते रहे हैं और ये परस्पर घुलती मिलती रही हैं। ऐसी स्थितियों में रक्त, नस्ल या जाति की शुद्धता का दावा कितना हास्यास्पद लगता है।'' लेकिन आए दिन वर्ग, नस्ल के आधार पर आदमी आदमी में अंतर किया जाता है। एक जाति दूसरी जाति को लूटती पीटती है, उससे बेगार करवाती है, क्योंकि वह तथाकथित उच्च नस्ल की है। एक जाति दूसरी जाति की बहन-बेटियों के साथ बदतमीज़ी करती है, उन्हें बेइज़्ज़त करती है, उन्हें नंगा करके गाँव में घुमाती है, क्योंकि वह अपने को सवर्ण मानती है। ऐतिहासिक साक्ष्यों को नज़रअंदाज़ करते हुए अपनी कथित आलोकिक रक्त नसल की शुद्धता और जातीय उच्चता के दभं से दूसरी जाति को आतंकित कर दासत्व की मानसिकता में रखे हुए है। ऐसी शोषित पीड़ित जातियाँ जिनका अतीत ज़लालत के अतिरिक्त कुछ नहीं, देश की आबादी का बड़ा हिस्सा है। देश के स्वस्थ वर्तमान के लिए , समझ के लिए, समझ को संस्कारित करो, मत समेटो संवेदनाओं को अतीत की चारदीवारी में। क्या इन्हें आज आदमी की तरह जीने का हक़ नहीं? देश के विकास में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इन्हें विकास की बराबरी में लाना होगा। ''अगर निरंतर व्यवस्थाओं का संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थायें तो टूटेंगी ही, अपने साथ धर्म को भी तोड़ कर रख देगी।''

संस्कारिता और परिमार्जित व्यवस्था व उदात्त परंपरावाले देश भारत के बारे में देववाणी श्री विष्णु पुराण 2/3/4 में कहा गया है -

'गायन्तिदेवा:किलगीतकानिधन्यास्तुतते भारतभूमिभागे
स्वर्गापवर्गास्पददार्गभूतेभावनितभूय:पुरुष:सुरत्वात्।

लेकिन आज इसकी प्रासंगिकता! घृणा, द्वेष, अलगाव, भेदभाव, शोषण व उत्पीड़न से इस भू पर स्वर्ग उतर आएगा क्या? मारकाट, लूटपाट, छीना-झपटी, तोड़-फोड़, हिंसा से देवता प्रसन्न होंगे क्या? जाति, धर्म, प्रांत, भाषा के विवाद खड़ा करके आदमी को आदमी से अलगाने से नैसर्गिक छटा छाएगी क्या? ममता, समता, सननदयता, सद्भाव, सहिष्णुता को स्वभावत: यहाँ फलने दो, फैलने दो भाईचारे को, फैलने दो अपनत्व की साझी संस्कृति को। फिर देखें, इस भारत भूमि पर फिर से मनुष्य रूप में विचरने के लिए देवताओं का भी मन बार-बार ललचाता है कि नहीं। फिर देखो, यही भू भाग फिर से स्वर्ग से भी अधिक सुख संपन्न हो जाता है कि नहीं। फिर से अपनी संवेदना को बड़ी, इतनी व्यापक बनाओ कि जिससे भारत भू को स्वर्ग बनाने वाली यह भारतीय सद्भावना फिर से जन-जन के जीवन में उतर आए- ''सभी सुखी हों, सभी निरागी हों, सभी भलाई देखें, किसी को कोई दु:ख न हो-

'सर्वे भवंतु सुखिन:सर्वे संतु निरामया:।
सर्वेभद्राणिपश्चंतुमाकशिचतदु:खभागग्भवेत्।।

संपर्क :
आगरा, उत्तर प्रदेश

राष्ट्रीय विचार मंच का कार्यालय, दिल्ली

आवश्यक सूचना

मान्यवर,

यह सच है कि 1857 ई० के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की लड़ाई असफल रही, किंतु यह भी सच है कि 1857 का यह विद्रोह मात्र सिपाहियों या राजा-रजवाड़ों का न होकर देश के सभी समुदाय-धर्म के लोगों का एक जन-विद्रोह था, जिसने भारत की आज़ादी की पृष्ठभूमि तैयार की, क्योंकि क्रांतिकारियों के मन में अँग्रेज़ी हुकूमत से मुक्ति पाने का एक ही भाव गूँजता था -

'तेरा वैभव अमर रहे माँ, हम दिन चार रहें न रहें।'

वर्तमान दौर में आज़ादी के साठ साल और प्रथम स्वतंत्रता संग्राम के 150 साल बीत जाने के बाद भी देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना के तेज़ी से लुप्त होने के साथ-साथ लोग अपना स्वाभिमान और आत्मविश्वास पूरी तरह खोते जा रहे हैं। इस स्वतंत्रता समर ने संपूर्ण देश में राष्ट्रीय एकता और स्वतंत्रता की इच्छा को जो संस्कार दिया, सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना जाग्रत की उसी पर आज ख़तरा मंडरा रहा है। उन दिनों के सैनिकों व नागरिकों में हिंदू-मुस्लिम भाईचारे और विभिन्न समुदायों के बीच एकता की जो भावना देखने में आती थी वह आज कहाँ दिख रही है। 1857 के विद्रोही अँग्रेज़ों की उपनिवेशवादी प्रयासों के ख़िलाफ़ थे, किंतु आज हम खुद ब खुद पश्चिमी संस्कृति और सभ्यता का उपनिवेश बनते जा रहे हैं और भूमंडलीकरण की आड़ में स्थापित हो रहे नव साम्राज्यवाद को ख़ुशी-ख़ुशी अपना रहे हैं। भारतीय राजनीति और उसके नेताओं में कुर्सी के लिए आज तेज़ी से स्वेच्छाचारिता, आपराधिक प्रवृत्ति, स्वार्थवादिता तथा अनैतिकता बढ़ती जा रही है। इसका अर्थ यह हुआ कि 1857 की क्रांति से हमने सीख नहीं ली और न ही भविष्य के लिए हम दीवाना हो पा रहे हैं।

सच तो यह है कि इतिहास का सबसे बड़ा सबक़ उससे सीखने और प्रेरणा प्राप्त करने का होता है। इस दृष्टि से देखा जाए तो वर्तमान परिदृश्य में 1857 की जनक्रांति की महत्ता और प्रासंगिकता बढ़ जाती है। कुछ इसी भाव से 1857 की प्रासंगिकता को उजागर करने के लिए आप प्रबुद्धजनों, इतिहासकारों, लेखकों व साहित्यकारों से 33 वें अंक की परिचर्चा के लिए प्रकाशनार्थ 15 अगस्त, 2007 तक अधिकतम 500 शब्दों में विचार आमंत्रित है।

❍ संपादक

क़लम कमज़ोर पड़ चुकी है

○ राजू रंजन

इस वक़्त क़लमकार भी एक ख़ास क़िस्म की छटपटाहट से गुज़र रहा है। सामाजिक-राजनीतिक स्तर पर उनकी कोई भी ऐसी गतिविधि नज़र नहीं आती, जो भविष्य के प्रति उम्मीद बँधाती हो। वे बौद्धिक व साहित्यिक गतिविधियाँ, जो समाज और उसकी नियामक शक्तियों पर सार्थक टिप्पणियाँ प्रस्तुत करती है और किसी न किसी रूप में अपनी नेतृत्वकारी भूमिका बनाए रखती है वह आज दम तोड़ती हुई दिखाई देती है और अगर आज क़लमकारों व बुद्धिजीवियों की कोई भूमिका है भी, तो वह अपनी-अपनी संरक्षक राजनीतिक-आर्थिक ताक़तों के यशोगान तक सीमित होकर रह गई है और जिसमें किसी भी तरह के सार्थक परिवर्तन की चिंगारी नज़र नहीं आती। अगर साहित्यकारों व बुद्धिजीवियों को प्रासंगिक बने रहना है, तो उसकी संवेदनशीलता व रचनाशीलता सामाजिक व राजनीतिक आंदोलनों से जुड़नी चाहिए, क्योंकि विचार की दरिद्रता और विचार करने वालों की कमी के इस दौर में सामाजिक एवं सांस्कृतिक संकट का सबसे ज़्यादा एहसास क़लमकारों को ही है। यही नहीं, उसकी मुख्यता इसी में होती है कि वह प्रवाहमान धारा को अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा और अध्ययन के अनुरूप तथा समय की आवश्यकतानुसार नई दिशा में मोड़ देता है। कहना नहीं होगा कि मौजूदा दौर की भयावह और विषम परिस्थिति में अगर साहित्यकार व प्रबुद्धजन स्वयं भाग्यवाद से हटकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाएँ और समाज में इसके प्रचार-प्रसार की भूमिका निभाएँ, तो बहुत-सी समस्याओं का समाधान तलाशा जा सकता है। दिल्ली के स्नातकोतर छात्र राजू रंजन ने बड़े मार्मिक ढंग से कमज़ोर पड़ती क़लम की ओर अपनी धारदार क़लम चलाई है, जो निश्चित रूप से क़लमकारों की आँख खोलने वाली है। साधुवाद।

○ संपादक

क़लमकार अपने साहित्य के माध्यम से जीवन का संदेश देता है। श्रेष्ठ साहित्य किसी समाज और राष्ट्र की प्रगति का परिचायक होता है। किसी भी राष्ट्र के साहित्य का अध्ययन करने से ही वहाँ के व्यक्ति, समाज व राष्ट्र के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। साहित्य व्यक्ति और समाज दोनों के लिए वरदान है। यह मनुष्य को तोड़ता नहीं, जोड़ता है। यह उम्मीदें जगाता है कि रात कितनी ही अँधकारमय क्यों न हो, उसका जाना अवश्यंभावी है। क़लम से निकली आग में सामाजिक कुरीतियाँ, अँधविश्वास, कुप्रथाएँ, रूढ़ियाँ आदि भस्मीभूत हो जाती हैं और समाज को विवेकपूर्ण दिशा में चलने के लिए सदैव प्रेरित करती है। आख़िर सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' ने यों ही महादेवी वर्मा को 'स्फूर्त्ति चेतना, रचना की प्रतिभा कल्याणी' नहीं कहा था। उनकी दृढ़ता और कांति-भावना को ज़रा आप देखें उनकी इन पंक्तियों में-

शृंखलाएँ ताप के डर से गलेंगी
भित्तियाँ यह लौह की रज में मिलेंगी।

किंतु आज़ादी के साठ साल बीत जाने के बावजूद आज यह देश और विश्व लौह-भित्तियों से घिरे हैं और हमे एक ऐसे हिंसक और अराजकता के दौर से गुज़र रहे हैं, जिसमें हमारा 'आज' बिल्कुल अव्यवस्थित है। एक ओर जहाँ गुज़रे हुए कल से नाता-रिश्ता टूट रहा है, वहीं दूसरी ओर आने वाला कल अनिश्चितताओं से भरा है। निश्चित रूप से हमारी शक्ति का एक बड़ा हिस्सा इस आज को संवारने, सजाने और समेटने में नष्ट हो रहा है। सिर्फ़ 'आज' को जीने की विवशता ने हमें स्वार्थ की ऐसी अँधेरी तंग-सुरंग में धकेल दिया है कि जिसमें संवेदनाओं का कोई स्थान नहीं है और जिसमें मानवीय मूल्यों-मर्यादाओं का क्षरण तेज़ी से हो रहा है। हमारी चिंताएँ सामाजिक सरोकारों से हटकर व्यक्तिगत सरोकारों तक सिमटती जा रही हैं और हम आत्मकेंद्रीत होते जा रहे हैं। साज़िश, संत्रास, हताशा, उन्माद, वहशीपन अपने उफान पर है। विश्वास टूट रहा है और धर्मांधता परवान चढ़ रही है। सरकार चाहे जिस राजनीतिक पार्टी की हो, निष्ठावान एवं ईमानदार आदमी हमेशा विपक्ष की भूमिका में रह जाता है। क्यों आज भी दलितों को मंदिर में प्रवेश के लिए अदालत के दरवाज़े खटखटाने पड़ते हैं? क्यों आज दोहरी मानसिकतावाले बुद्धिजीवियों को सांप सूँघ जाता है? और तो और आज के तथाकथित प्रबुद्धजन और साहित्यकार तथा प्रगतिशील भी कला और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के नाम पर उसी की पीठ थपथपाने तथा महिमामंडित करने लगते हैं, जो चोर, उच्चके, बेईमान, समाज विरोधी व देशद्रोही और सांप्रदायिक ताक़तों को बढ़ाने तथा सामाजिक समरसता को बिगाड़ने में ऑक्सीजन का काम करते हैं। इसी प्रकार आज प्रायः सभी राजनीतिक दलों के जनप्रतिनिधि एवं संवैधानिक संस्थाओं से जुड़े नेता संवेदनशील मुद्दों पर बहस करने की बजाय अपना ज़मीर बेच तात्कालिक लाभ के लिए इसे राजनीतिक रंग देने की कोशिश करते हैं।

ऐसी विषम व भयावह परिस्थिति में हमारे क़लमकार व साहित्यकारों की क़लम क्या कमज़ोर नहीं हो चुकी है? यह सवाल आज हर देशवासी के मन में कौंध रहा है जिसका जवाब हर क़लमकार को देना होगा। आख़िर उनके स्वाधीन चिंतन और उनकी स्वाधीनता को क्या हो गया है? क्या क़लमकारों को अपने अंतर्मन में झाँककर नहीं देखना चाहिए? क्या आज एक ईमानदार साहित्यकार की नैतिकता की हत्या नहीं हो रही है?

चाहे प्रेमचंद हों या निराला या हों फणीश्वर नाथ रेणु अपने समाज की विषमताओं और भूख से तड़पते जीवन, सामंती प्रवृत्ति और दरिंदगी में लिपटी

शेषांश पृष्ठ 36 पर

रात ढल गई

○ सुखदेव नारायण

नींद टूट चुकी थी, बिछावन पर करवटें बदलता रहा। मैं उसे बार-बार जोड़ने की कोशिश कर रहा था, लेकिन वह जुट नहीं पाती थी।

रात बिल्कुल ख़ामोश थी। ख़ामोशी तोड़ने की कोई कोशिश नहीं कर रहा था। पर एक आवाज़ कानों में आ रही थी और मैं समझता हूँ, वह मीलों दूर तक जाती होगी, क्योंकि मैं भी तो उस आवाज़ आने वाले स्थान से एक मील दूर पर हूँ। लेकिन उस कल के पुर्जे़ की आवाज़ उन्हीं लोगों के कानों में जाती होगी, जो इस समय जागे होंगे। फिर दिन के शोर-शराबे में इस तरह की छक-छक की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ेगी।

फिर बग़लवाले घर से मुर्ग़ा बांग देकर चुप हो गया। लोग कहते हैं, मुर्गे़ का बांग सबेरा होने का एलान है। और तब हमें अपनी घड़ी पर विश्वास नहीं हुआ। कहीं घड़ी बंद तो नहीं है। तकिए के नीचे से उसे निकालकर कान तक ले गया। वह टिक्-टिक् कर रही थी। किंतु उस दिन घड़ी बंद हो गई थी, तो हमें लगा था कि मेरे दिल की धड़कन रुक गई है, पर बार-बार कोशिश करने पर भी उस रात घड़ी नहीं चल सकी थी। फिर हमें ख़्याल आया था कि घड़ी कमीज़ में रखी हुई थी और वह खूँटी से गिर पड़ी थी। शायद घड़ी को कहीं चोट आ गई होगी।

फिर नींद ... और मैं करवटें बदलता रहा।

ख़्याल आया उस लड़की का जिसे आज से बीस साल पहले मैंने चाहा था कि वह मेरे हृदय की रानी बने। मैंने उसे सजाया था, सँवारा था। एक चित्रकार जैसे किसी चित्र में रंग भरता है, वैसे मैंने उसमें भी रंग भरने की कोशिश की थी और वह लड़की रिश्ते में बहन लगती थी।

एक दिन जब लोगों को पता चला तो एक तरफ़ से सभी मुझपर थूकने लगे। पर मेरी दादी ने कहा था,

''अपनी बहन से शादी कर लो ...।''

माँ कुछ मुलायम हो गई थी। माँ का दिल तो मोम होता है न, वह राज़ी हो गई। लेकिन उस लड़की के पिता को जब मालूम हुआ तो उसने एक ऐसा पत्र मेरे यहाँ भेजा था जैसे मैं उसके सामने खड़ा हूँ और वह मेरे गालों पर तमाचा जड़ता जा रहा हो।

तब फिर मैंने करवट बदली। बग़ल के मकान के बाद भी एक परिवार रहता है। उस घर में एक छोटा बच्चा जाग गया था। उसके रोने की आवाज़ आई। जागने पर कुछ रुलाई लिए उसके मूक स्वर थे। शायद वह माँ से दूध माँगता हो। लगा उसकी माँ भी जाग गई। मैं देख नहीं पा रहा हूँ उसे, पर अब बच्चा चुप हो गया है। शायद माँ उसे गोद में लेकर स्तन उसके मुँह पकड़ा चुकी है, सोए-सोए ही। उसकी आँखें अभी भी बंद होंगी। आँचल उसके शरीर पर नहीं होगा। ब्लाउज का बटन खुला हुआ होगा। बच्चे का दूसरा हाथ माँ के दूसरे स्तन पर होगा। और पता नहीं बग़ल में उस औरत का पति सोया है या नहीं ...।

अभी भी मेरी आँखें बंद हैं। चादर से शरीर को ढंक लिया है। कुछ दूरी पर लगता है, एक दो आदमी आपस में बातें करते हुए कहीं जा रहे हैं। और मैं करवट बदल रहा हूँ ...।

परसों मैं भी घर से आया हूँ। सुबह चार बजे नींद खुली थी, पत्नी की बग़ल में सोया था। उसकी बग़ल में दो बच्चे सोए थे। एक माँ का दूध पीने वाला और दूसरा दूध नहीं पीने वाला। दोनों बच्चे सोए ही रह गए। मैं जागा, पत्नी जग गई। पर वहाँ भी मैंने करवट बदली थी। हम दोनों आमने-सामने थे। मैंने पत्नी के ललाट को चूम लिया था। पूछा-

''क्या जाना ही होगा? घड़ी की सूई पीछे की ओर नहीं चलेगी।''

और तब पत्नी ने कहा था-

''उठिए ...।''

और सच, मैंने उठने पर फिर घड़ी देखी। सवा चार बजा था। पत्नी मुलायम हो गई। पर घड़ी मुलायम नहीं थी। उसकी वहीं पुरानी टिक्-टिक् की आवाज़। एक सेकण्ड के लिए रुकने को तैयार नहीं थी।

मैं रिक्शा पर बैठ गया। बच्चों ने पाँव छूकर प्रणाम किया। उन्हें जगाया गया था। दो आसानी से जग गए थे और एक अवस्था में उससे छोटा था, पता नहीं कैसे जागा होगा। पत्नी घर के अंदर थी। मैंने ख़्याल नहीं किया, वह हमें आँखों में देख रही थी या आँखों से खिड़की होकर देख रही थी। और मेरा रिक्शा चल पड़ा। पता नहीं उन मासूम बच्चों के दिल में क्या पैदा हुआ होगा।

मैं जगा हूँ मेरी आँखें बंद हैं। करवट सोया हुआ हूँ। एक कान तकिए पर है। तकिए के नीचे घड़ी है। घड़ी की टिक्-टिक् कान तक़ पहुँच रही है और अब धक-धक की आवाज़ सुनाई नहीं पड़ती है। अभी-अभी दो मुर्गें की बांग सुनाई दी। मुझे एहसास होता है, रात ढल चुकी है, जैसे औरत ढल जाती है।

इच्छा हुई ढ़ली हुई रात को बाहर निकलकर देखूँ, आँगन में आया, आकाश की ओर देखा, ठीक सिर के ऊपर अर्द्धवृत्ताकार चाँद था, निस्तेज नहीं, आकाश में तारे सघन नहीं, आकाश का रंग नीला था। आकाश मौन था।

मैंने महसूस किया। रात की ढलती जवानी मनोरम है। अच्छा लग रहा है। बग़ल में सेमर का पेड़ था। उसने भी वही कहा। पर तब ढली हुई औरत लोगों को क्यों अच्छी नहीं लगती। कोई जवाब नहीं मिला। फिर मैं कमरे में चला आया।

बिजली का स्विच ऑन किया। अपना ही चित्र, दाढ़ीवाला। फूटती जवानीवाला। हँसता हुआ। सबों को अपना चेहरा भोला नज़र आता है। अच्छा नज़र आता है। क्या मैं पुन: वहाँ नहीं लौट सकता हूँ? सड़क पर आदमी चलता है तो जो दूरी वह तय कर चुकता है, उधर भी वह चाहे तो जा सकता है। आगे-पीछे जाने की छूट सड़क देती है। जीवन की सड़क वैसी क्यों नहीं हो जाती? पीछे के मील-स्टोन को जीवन की सड़क हाथों से क्या स्पर्श करने देगी?

फिर दाढ़ीवाली चित्र कहने लगा, ''क्यों दोस्त! हमें इस दशा में क्यों तुमने

क़ैद किया? इस कमरे में जो मित्र तुम्हारे आते हैं, मुझे ग़ोर से देखते हैं।''

और तब मेरा मन एक बार फिर झनझना उठा, जैसे घड़ी का स्प्रिंग टूट गया हो। ग्रामोफोन बज रहा हो और सहसा उसका स्प्रिंग खुल गया हो। मेरे सामने वही लड़की आकर खड़ी हो गई, जिससे मैंने सचमुच मोहब्बत की थी।

मैं कुर्सी पर बैठ गया था। पाँच बजे सुबह जो गाड़ी आती है, वह स्टेशन पर आकर लग गई। इंजन के चक्के की आवाज़ साफ़ सुन रहा हूँ। धीरे-धीरे आवाज़ बंद पड़ गई। गाड़ी स्टेशन पर लग गई है। लोग चढ़ रहे हैं। लोग उतर रहे हैं, पर मैं ..., मैं कमरे में हूँ, अकेले हूँ। अपनी तस्वीर के सामने हूँ, जो बीस साल पुरानी है।

अभी की तस्वीर नहीं है कि मैं अपने चेहरे का मिलान करूँ। पर दाढ़ीवाली तस्वीर हमें आज भी अच्छी लगती है। मैंने कहा-''दोस्त तुम अच्छे लगते हो। मैं अब अच्छा नहीं लगता हूँ।''

फिर मैंने महसूस किया, मैं किससे बातें कर रहा हूँ। और तब वह बात मन में उभर आई। मेंने कुछ इरादे किए थे। आँखें कुछ देखना चाहती थीं, मन में कुछ अरमान थे, और ..., मैं उस अरमान को पूरा नहीं कर सका, तमन्नाएँ अधूरी ही रहीं, और इस परिस्थिति में मैंने अपने दाढ़ीवाले चेहरे को क़ैदी बना दिया था, और अब क़ैदी बनाकर काला पानी दे चुका हूँ। दाढ़ीवाला चेहरा मेरी आँखों के सामने है।

उस दिन वह लड़की उस डिब्बे में बैठ चुकी थी। जिस डिब्बे से मैं उतरने वाला था। मैंने उस लड़की से मोहब्बत की थी। वह मुझे देखती रही, मैं उसे देखता रहा, उसकी बहनें उसके साथ थीं, उसकी माँ उसके साथ थी। मैंने उसकी माँ को प्रणाम किया-''मौसी! प्रणाम!'' और उनसे जवाब मिला, दुलार मिला। मौसी नहीं जानती थी कि मैं उसकी बेटी से मोहब्बत करता हूँ।

गाड़ी खुल गई। मैं गाड़ी से उतर नहीं सका। उस लड़की का नाम तीन अक्षर के संयोग से बनता था। मैं उसे देखता रहा। वह मुझे देखती रही। उसकी आँखें नम थीं। मेरी पलकों में भी मोती फँसे थे।

गाड़ी अगले स्टेशन पर रुकी। मौसी ने कहा-''बेटा! वापस जा। तुम्हारी माँ प्रतीक्षा कर रही होगी।''
मैं गाड़ी से उतर गया। उस लड़की की बहनों ने मुझे प्रणाम किया। उसमें उसकी आवाज़ डूब गई थी।

दूसरी दिशा में जाने वाली गाड़ी पर चढ़कर फिर मैंने उस डब्बे की ओर देखा जिसमें वह बैठी थी। उसकी बहनें थीं, उसकी माँ थी। मैं सबों को नहीं, सिर्फ़ उसे देख रहा था।

अब आकाश साफ़ हो चला है। मैं कमरे में हूँ। बिजली का लट्टू जल रहा है। खिड़की से आकाश में एक-दो तारे दिख रहे हैं। अभी-अभी झींगुर आवाज़ देकर चुप हो गया है। यह दूसरी आवाज़ तो बस की है, जो यहाँ से बड़े शहर को जाती है।

फिर तीन अक्षरों के संयोग से नामावली, उस लड़की का चेहरा मेरी आँखों के सामने आ गया। मेरी आँखें इधर भी उस लड़की को ढूँढ़ रही थी। उससे एक बार बातें होतीं, उसे देखता, उससे कुछ पूछता।

इस बार मैं फ़ैज़ाबाद दूर के रिश्तेदार भाई की शादी में गया था। उस भाई ने दूसरे दिन कहा-''भैया! उस घर में एक औरत मिली है। वह आपसे नाता जोड़ती है, बहन बतलाती है।''

मेरा मन खुश हो गया। उछल पड़ा जैसे गेंद को पटकने पर वह आकाश छूने लगती है। मेरी मुरादें पूरी हो गई, मैंने इरादा किया, शाम को उससे मिलने जाएँ। मेरे साथ छोटे भाई लग गए। मैं इनकार नहीं कर सका, शादी की चहल-पहल में अपनी महबूबा से मिलने गया। लोगों को यह कहकर कि मैं एक बहन से मिलने जा रहा हूँ। मेरी महबूबा मेरे सामने आई। उसने हमें प्रणाम किया। मेरे भाईयों ने भी उसे प्रणाम किया।

पर हमलोग चार बजे सुबह में मिल रहे थे। फिर भी उस आँगन में, उस तंग घर में बड़े पावर की बिजली का लट्टू लटक रहा था। मेरी महबूबा खड़ी थी, रिश्ते की बहन खड़ी थी।

हाल-चाल उसने पूछा। हाल-चाल मेरे भाईयों ने पूछा। मैंने भी पूछा, फिर आँखें उसे ऊपर से नीचे तक निहार रही थीं। आँखें जो खोज रही थीं, वह मिल नहीं रहा था। मेरी महबूबा का एक चेहरा मेरी आँखों में क़ैद हो चुका था, पता नहीं मेरा कौन सा चेहरा उसकी आँखों में क़ैद था।

मेरी आँखें कुछ पूछना चहती थीं। पूछ नहीं सकीं। पता नहीं उसकी आँखें भी कुछ पूछनां चाहती थी या नहीं।

वह हमें देख रही थी। वह मेरे छोटे भाइयों को देख रही थी। अब उसकी माँग में सिंदूर था, उस समय उसकी माँग में सिंदूर नहीं था। अब उसे दो-चार बच्चे हैं, उस समय बच्चे नहीं थे।

मेरी महबूबा भी एक औरत है, जिसे बीस साल बाद मैंने देखा।

अभी भी कमरे में बिजली का लट्टू जल रहा है। पर रात ढल गई है। सवेरे का प्रकाश बिजली के लट्टू की रोशनी को परस्त कर रहा है, बग़ल में मज़दूर काम पर जाने लगे हैं, आकाश साफ़ हो चुका है।

मैं अपनी महबूबा से अलग हो रहा हूँ। बिजली की रोशनी में वह मुझे बीस साल पहले की अपेक्षा आज ज़्यादा मनोरम दिख रही है। उसके जिस्म पर आँचल है, उसके गालों पर शिकन है। अब न वह गोरापन है, न चिकनापन और न सुर्खी। गोरापन ढलान पर है। पर वह मुझे मनोरम दिख रही है।

रात ढल गई है, नज़र नहीं आती है, पर मैं अभी भी अपनी आँखों में अपनी महबूबा को देख रहा हूँ। एक मन फिर उससे अकेले में मिलना चाहता है और आँखें जो पूछ नहीं सकीं, उससे दिल छूना चाहता है। लेकिन दूसरा मन कहता है, 'अब फिर कुछ न पूछो। आगे ...।''
और आकाश में हवाई जहाज जा रहा हो ऐसी आवाज़ आती है। बाहर निकला, आकाश से एक हवाई जहाज को लड़खड़ाता हुआ नीचे की ओर आते हुए देखा। हल्ला हुआ। दौड़ने लगा, लोग दौड़ने लगे, दुश्मन का जहाज ...। मेरी महबूबा मेरी आँखों में है। मैं भी दाढ़ीवाले फ़ोटो को लेकर बाहर निकल पड़ा, देखते-देखते शहर मटियामेट हो गया। मैं देखता रहा, मेरे हाथ में कुछ नहीं था। सिर्फ़ दाढ़ीवाला फ़ोटो था। बीस साल पहले का ...।

संपर्क : सी॰के॰ आश्रम, वसंतपुर,
भाया वीरपुर, सुपौल (बिहार)
दूरभाष : 06471-222264

दाग़

○ डॉ० शाहिद जमील

बलवीर सिंह के बिस्तर छोड़ते ही मंजीत कौर भी आँखें मलती हुई पलंग से उतर जाती और उसकी ज़रुरियात पूरी करने लगती। खट-खुट की आवाज़ से कभी-कभार किसी बच्चे की नींद टूट भी जाती तो वह करवट बदलकर सो जाता। बलवीर सिंह ने कई बार मना किया बल्कि सख़्ती से रोका भी कि वह क्यों अपनी नींद ख़राब करती है। एक-दो रोज़ की बात तो है नहीं और न वह सफ़र पर जा रहा होता है। देर रात घर लौटना और सुबह उठना तो उसकी मजबूरी है। ढाबे में उसे देखकर ही अधिकतर ड्राइवर गाड़ी रोकते हैं।

सुबह के वक़्त मंजीत कौर को पर लग जाते। वह दुपट्टे का इस्तेमाल नहीं करती। दौड़-दौड़कर पानी, साबुन और मंजन देने में उसे सुविधा होती है। बलवीर सिंह अक्सर चुपके-चुपके उसे निहारता और आँखों से जिस्म को टटोलने-सहलाने लगता। ऐसे मौक़ों पर वह जानबूझकर थोड़ी लापरवाही बरतने लगती। मर्द को बाँधकर रखने के लिए यह सब करना ही पड़ता है।

बलवीर सिंह रात अच्छे मूड में था। ढाबे से वह तंदूरी चिकन, ख़स्ता निमकी और ताज़ा रबड़ी लेकर आया था। खाना खाने के बाद उसने अपनी दो उँगलियों का चमचा बनाकर मंजीत को बड़े प्यार से रबड़ी खिलाई। मीठी चीज़ और मीठे बोल का औरत पर मीठा असर होता है। सुबह वह संभल-संभलकर क़दम रख रही थी। वह जानती है, हस्बे आदत वह ज़रूर कोई फ़िकरा कसेगा। नये-नये फ़िक़रे तराशने में उसे मज़ा आता है। साबुन-पानी रखकर जाने लगी तो बलवीर सिंह ने कहा,

"मंजीते! अब तू गदरा गई है ... तेरे कूल्हों का कटाव ..."

"तू भी तो बूढ़ा हो चुका है सईयाँ ... दो सीढ़ियाँ चढ़ते ही दम फूलने लगता है तेरा ..."

"लेकिन सीढ़ियाँ तो चढ़ ही जाता हूँ ना ..."

"मुँह न खुलवाओ ... कई बार लुढ़क पड़े हो . .. मर्दों की यही बात निराली होती है ... शिकस्त कुबूलते नहीं ... हारकर भी जीत का जश्न मनाते ..."

"अरे, अरे तू तो सचमुच ख़फ़ा हो गई ..."

"ऐसी भी नहीं कि बुलावे पर इनकार कर दूँ . .."

दोनों हँस पड़े।

"तेरे दाँत अनार के दाने हैं ... और कबूतर ..."

"अब बस भी करो, बच्चे सुन लेंगे ..."

"सुबह की नींद में होंगे ..."

"कहीं आँखें बंद और कान जागे हों ..."

"औरतें शंकाओं में समय गंवा देती हैं ..."

"और मर्दों का बस चले तो ...?"

"मंजिते! एक बात कहूँ ... तेरी सूरत देखकर जाता हूँ तो दिन अच्छे कटते और मुनाफ़ा भी बढ़ जाता ..."

"ये तो सौ बार सुनी सुनाई है ..."

"लेकिन है सोलह आने सच ..."

उसने बाहें फैला दी और मंजीत कौर उनमें समा गई।

"तेरा दिल सच्चा है ..."

"तू भी तो नेक कुड़ी है। एक बदसूरत शख़्स पर जान छिड़कती है ..."

"चेहरे के दाग़ तो दाढ़ी से छुप गए, बस परेशानी और आँखों के नीचे के नज़र आते हैं ..."

पंजों के बल उचक-उचककर दाग़ों के बोसे लेकर उसने कहा,

"तेरी रूह बेदाग़ और जिस्म तवाना (जवान) है ..."

"अभी-अभी तो ..."

"वह तो तेरे कहे का बदला था ..."

बलवीर सिंह का मामूल है, वह तैयार होकर सिंगारदान के पास जा खड़ा होता और पगड़ी जमाकर दाग़ों को देखता-छूता, जैसे वह इत्मीनान कर लेना चाहता हो कि दाग़ चेहरे पर मौजूद हैं ना।

बाबा फ़रीदगंज क़स्बे में सड़क किनारे 'सरदारजी का ढाबा' है। यह साफ़-सफ़ाई, उम्दा खाने-पीने की चीज़ों और ज़रूरी सुविधाओं से ज़्यादा बलवीर सिंह के अच्छे अख़्लाक़ के सबब ज़्यादा मशहूर है। इस ढाबे का उसूल निराला है। सब मालिक, सब नौकर। जो जहाँ होता वहीं के काम निपटा देता। ग़ल्ले में ताला नहीं झूलता। ग्राहक से पैसा माँगकर वसूला नहीं जाता। अतिरिक्त सब्ज़ी, झोर, सलाद और नीबू माँगने वाले निराश नहीं होते। उधारी रक़म की अदायगी उसी पर छोड़ दी जाती। बलवीर सिंह ज़्यादातर घूम-घूमकर परिचितों से उनकी ख़ैरियत दरयाफ़्त करता रहता।

आज बलवीर सिंह को दूर से ही एक मजमा नज़र आया। वह गद्दी पर न जाकर सीधे मजमा के पास गया। चारपाई पर एक साधू खा-पी रहा था। लोग उसे घेरे हुए थे। बलवीर सिंह से आँखें चार होते ही वह खाना छोड़कर खड़ा हो गया। बलवीर सिंह उसकी गर्दन पकड़कर घसीटते हुए उसे कड़ाहे तक लाया, पास पड़े छनौटे को गर्म तेल में डालकर चीख़ा,

"बोल ... बना दूँ चेहरे पर दाग़? ..."

वह थर-थर काँपने लगा। बात किसी की समझ में नहीं आ रही थी। बलवीर सिंह गरजा,

"शमशीर! रस्सी लाना ..."

रस्सी लेकर आते ही उसने हुक्म दिया,

"अब इसे बाँध डालो ... महताब तू जल्दी से थानेदार को साथ लेता आ ..."

पहले एक खंभे से खाट को सटाकर बाँधी गई फिर साधू को खाट से जकड़ दिया गया। अब वह श्रद्धा की जगह देखने की चीज़ बन गया था। उसने कोई आपत्ति नहीं की। बची पूड़ी-जलेबी कौवे ले उड़े। बलवीर सिंह पीठ पर हाथ बाँधे टहल रहा था। लोग हैरान थे लेकिन उसके सुर्ख़ चेहरे को देखकर किसी में हिम्मत नहीं हो रही थी कि पूछे,

"आख़िर बात क्या है? ... यह कौन है? ...इसका क़सूर क्या है? ..."

भीड़ देखकर ड्राइवर जानकारी हासिल करना चाहते लेकिन जवाब न मिलने पर धीरे-धीरे आगे बढ़ जाते। हर व्यक्ति पूछता,

"बात क्या है भई ..."

और सबको एक ही जवाब मिलता,

"पता नहीं जी ..."

महताब सिंह जीप से कूदकर उतरा और दौड़ता हुआ भीड़ को चीड़कर आगे बढ़ने लगा।

"चलो हटो ... रास्ता साफ करो। थानेदार साहब आ गए हैं ..."

थानेदार साहब और बलवीर सिंह के लिए कुर्सियाँ लगी थीं, घेरा छोटा था। एक

सिपाही ने ज़मीन पर लाठी से निशान बनाकर घेरे को बड़ा कर दिया। थानेदार साहब ने साधू को एक नज़र देखकर कहा,

''अच्छा ... चोरी का मामला है ... साधू के भेष में है ... सरदारजी! अपना बयान दर्ज कराइए . .. अभी ससुराल भेजता हूँ इसे ...''

''ज़रा इसके चेहरे को ग़ौर से देखा जाए हुज़ूर! ... कहीं दाग़ नज़र आता है? ...'' बलवीर सिंह ने कहा।

''बेदाग़ है सरकार ...''

पास खड़े सिपाही ने उसे ग़ौर से देखकर कहा।

''अब मेरा चेहरा देखिए सिपाहीजी ...''

''जले का दाग लगता है ...''

सिपाही ने सोच-विचारकर कहा।

''बिलकुल सही ... ये तेल से जले का दाग़ है ... कुछ दाढ़ियों में छिप गए हैं ...'' बलवीर सिंह ने कहा।

''आपने इसे मारा-पीटा नहीं, सिर्फ़ बाँधकर रखा है। यही कहना चाहते हैं ना ...''

थानेदार ने कहा।

''नहीं जी, मैं तो इसके चेहरे का दाग़ दिखाना चाहता हूँ ...''

''बात समझ में नहीं आ रही है ...''

थानेदार ने कहा।

''आप सब लोग बैठ जाइए ...''

सिपाही ने सख़्त लहजे में कहा।

''हुज़ूर! पहले सारी बातें सुन लीजिए। फिर उन्हें मेरे बयान के तौर पर सजाकर लिखवा लीजिएगा। मैं दस्तख़त कर दूँगा ...''

थानेदार साहब के सामने चाय का ग्लास रख दिया गया। सिपाहियों ने हाथ बढ़ा-बढ़ाकर चाय के ग्लास पकड़े और पीने लगे।

बलवीर सिंह ने कहना शुरू किया,

''बात कुछ पुरानी है। उस वक़्त मैं तालिब इल्म था। गाँव के आम के बाग़ में एक साधू ने आकर डेरा डाला। आस-पास के गाँव में खबर फैलते देर नहीं लगी कि साधू बाबा बड़े पहुँचे हुए और करामाती हैं। जो कहते, वह सच साबित होता है। गाँव की बहुत-सी पुरानी बातों को भी बताया है। वे सिद्धपुरुष महात्मा हैं। बहुत से लोगों का सोना दुगुना कर चुके हैं। अधिकांश लोगों ने इसे सच नहीं माना। साधू बाबा के जाने के एक हफ़्ते बाद राज़ खुला कि जिन औरतों ने पोशीदा तौर पर गहने दिए थे, उनके सोने सचमुच दुगुने हो गए। उन्हें फ़रेबी समझने वाले पछताने लगे। लोगों ने बहुत तलाश किया लेकिन साधू बाबा का कहीं सुराग़ नहीं मिला। धीरे-धीरे लोग इस बात को अपनों की मौत की तरह भूल गए ...''

''ये वही साधू बाबा हैं? ...''

सिपाही ने पूछा।

''अगर वही सिद्धपुरुष महात्मा होते तो क्या मैं उन्हें इस तरह बाँधकर रखता ...''

बलवीर सिंह ने जवाब के बदले सवाल जड़ दिया।

''बीच में पूछ-ताछ मत किया करो ...''

थानेदार ने सिपाही को डाँटकर कहा।

''हाँ, तो सरदारजी! इस साधू को आपने क्यों बाँध रखा है? ...''

''बाँधा है तो वजह भी बताऊँगा हुज़ूर! लेकिन पहले अपने चेहरे के दाग़ का राज़ खोलता हूँ . .. आई॰ ए॰ पास करते ही बाऊजी ने मेरी शादी अपने दोस्त की बेटी से करा दी। चंद महीने तो ख़ूब अच्छे गुज़रे लेकिन एक दिन बाऊजी से काम-धंधा शुरू करने को लेकर बक-झक हो गई। गुस्से में घर से निकला और शहर की जानिब पैदल ही चल दिया। गर्मी का दिन था। अँधेरा होने के बाद एक ढाबे तक पहुँच पाया। पैदल चलते-चलते थक गया था। भूख से हाल बेहाल हो रहा था। ढाबे के पास खड़े ट्रकों को देखकर हिम्मत हार गया और चुपके से बकरी लदे एक ट्रक में घुसकर बैठ गया। सुबह आँख खुली तो ट्रक खड़ा था। झाँककर देखा, ढाबे में ड्राइवर खा-पी रहे थे। नज़रें बचाकर मैं उतर गया। कुछ ही दूर पर एक तालाब था। ज़रूरियात से फ़ारिग़ होकर लौटा तो ट्रक जा चुका था। एक अधेड़ उम्र सिक्ख गद्दी पर बैठा था। हिम्मत जुटाकर मैंने खाने-पीने की चीज़ माँगी। वह गद्दी से कूदकर उतरा, कड़ाहे तक गया और छनौटे से गर्म तेल मेरे मुँह पर फेंक दिया। मैं दर्द से बिलबिलाने लगा। उसने मेरी गर्दन पकड़कर कहा, ''मेरे साथ चल।'' मैं साये की तरह उसके साथ चलने लगा। वह मुझे एक दवा की दुकान पर ले गया। मेरे ज़ख़्मों की मरहम-पट्टी करवाई। दुकानदार ने चंद दवाएँ भी दीं। वह मुझे साथ लेकर ढाबे पर आया और कहा, ''अब तू सभी जगहों से जूठे बर्तन उठाकर माँज।'' मैंने बर्तन माँजकर रख दिए तो उसने कहा, ''अब झाड़ू लगा और सारे खाटों को तरतीब से सजा देना।'' काम पूरा करके खड़ा हुआ तो उसने मुझे इशारे से बुलाकर कहा,

''हाथ-पाँव सलामत रखकर भीख माँगता है . .. शर्म नहीं आई ... चेहरे पर दाग़ बना दिया है। हाथ फैलाते ही इनमें टीस पैदा होगी ...''

उसने ग़ल्ले से सात रुपये निकालकर मेरी हथेली पर रखकर कहा,

''यह तेरी मेहनत की मजूरी है। अब जो मर्ज़ी, वह खरीदकर खा ...''

''पाँच रुपये की पूड़ी-सब्ज़ी ...''

मैंने धीरे से कहा।

उसने हथेली से पाँच रुपये उठा लिए और आवाज़ दी,

''सुखबीरे! इसे पाँच की पूड़ी-सब्ज़ी दे दे ...''

खड़े-खड़े खाने लगा तब उसने नरमी से कहा,

''जा ... खाट पर बैठकर खा। अब तू मेरा ग्राहक है ...''

उसने फिर हाँक लगाई,

''सुखबीरे! पानी लगा दे ...''

जाने लगा तो उसने मुझसे पूछा,

''दर्द ज़्यादा तो नहीं हो रहा ...?''

''कोई ख़ास नहीं ...''

मैंने झूठ बोल दिया था।

''खाकर दवा खा लेना ... दर्द ज़्यादा हो तो लालवाली टिकिया चार-चार घंटे में ... हफ़्ते-दस

दिनों में ज़ख्म भर जाएँगे, अलबत्ता दाग़ रह जाएँगे ... उन्हें रहना भी चाहिए ...'' उसने कहा।

रात आँख बचाकर मैं फिर एक ट्रक में छुपकर वहाँ से निकल गया। इस हादसे ने मेरी ज़िंदगी बदल दी। मैंने बाऊजी को ख़त से आगाह कर दिया कि अब मैं कुछ बनकर ही लौटूँगा, मंजीत का ख़्याल रखना। रात-दिन मेहनत मज़दूरी करके रुपये जमा करने लगा। एक साल बाद इतने रुपये जमा हो गए जिससे यह ढाबा खोल लिया। दो साल बाद गाँव लौटा। सबके लिए कुछ न कुछ लेता गया। हफ़्ता-दस दिन रहा। बाऊजी को पंद्रह हज़ार रुपये देकर खेत रेहन से छुड़ाया। वापसी पर मंजीत को साथ लेता आया। हर साल दस-पंद्रह दिनों के लिए गाँव जाता हूँ। अब मेरे तीन बच्चे हैं। वाहेगुरु की कृपा से खुशहाल हूँ। सेवा करता और सुखी रहता हूँ ...''

''सरदारजी! इस साधू ने कौन-सा जुर्म किया है? ...'' थानेदार ने पूछा।

''इसने ... इसने आस्थाओं का सौदा किया है . .. इसका तन उजला पर मन काला है। इसका गोरा चेहरा दाग़दार है ... इस बार जब मैं गाँव गया तो एक दिन अचानक शोर मचा, दस साल बाद सिद्धपुरुष महात्माजी गाँव के आम के बाग़ में उसी जगह नज़र आए हैं ... फिर क्या था लोगों का ताँता बंध गया। इस बार खूब स्वागत-सत्कार हुआ ... मंजीत कौर ने माँ को दर्शन के लिए उकसाया। माँ और मंजीत को लेकर मैं गया था। हफ़्ता दिन बाद पूरे गाँव में कोहराम मच गया। इस बार साधू बाबा पूरे जवार को चूना लगाकर ग़ायब थे ... लुटने वालों में मंजीत कौर और माँ भी हैं ...''

बलवीर सिंह खड़ा होकर साधू बाबा की झुकी गर्दन को ज़रा ऊपर उठाते हुए कहा,

''क्यों सिद्धपुरुष महात्माजी ... मैं झूठ तो नहीं कह रहा हूँ ...''

फिर वह थानेदार से मुख़ातिब हुआ,

''कहा था ना ... इसके बेदाग़ चेहरे पर दाग़ दिखाऊँगा ...''

थानेदार ने ग़ौर से बलवीर सिंह का चेहरा देखा। वह बेदाग़ नज़र आया। फिर उसने सिद्धपुरुष महात्माजी पर नज़र डाली, वह सिर से पाँव तक दाग़दार नज़र आया।

संपर्क : आवास सं॰ सी-6,
पथ सं॰- 5, आर॰ ब्लॉक,
पटना- 800 001

रचनाकारों से

1. रचना भेजने के लिए कोई शर्त नहीं है, सभी रचनाकारों का हम हार्दिक स्वागत करते हैं। उदीयमान रचनाकारों को विशेष रूप से प्रोत्साहित किए जाने का प्रयास रहेगा।
2. राष्ट्रीय भावनाओं पर आधारित तथा वैचारिक रचनाओं को प्राथमिकता दी जाएगी।
3. रचना एक तरफ / कम्प्यूटर पर कम्पोज्ड अथवा सुवाच्य स्पष्ट लिखी होनी चाहिए। प्रयास यह हो कि रचना कम्प्यूटर पर कम्पोज़ कराने के बाद उसका सी॰डी॰ कोरियर से भेजें अथवा उसे ईमेल द्वारा भेजें।
4. रचना के अंत में उसके मौलिक अप्रकाशित व अप्रसारित होने के प्रमाण पत्र के साथ रचनाकार का नाम व पूरा पता अवश्य लिखा होना चाहिए।
5. रचना के साथ पासपोर्ट / स्टाम्प आकार की श्वेत एवं श्याम तस्वीर की दो प्रतियाँ अवश्य संलग्न करें।
6. प्रकाशित रचनाएँ वापस नहीं की जातीं, कृपया उसकी प्रति अवश्य रख लें।
7. प्रकाशित रचनाओं पर फिलहाल पारिश्रमिक देने की कोई व्यवस्था नहीं है, हाँ, रचना प्रकाशित होने पर अंक की प्रति अवश्य भेजी जाएगी।
8. किसी भी विधा की गद्य रचनाएँ 1500 शब्दों अथवा दो पृष्ठों की मर्यादा में ही स्वीकार्य होंगी।
9. समीक्षार्थ पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना आवश्यक है।

संपादक

'दृष्टि' 6, त्रिचार बिहार, यू-207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92,
दूरभाष: (011) 22530652, 22059410
email- sidheshwar66@ yahoo. com

हम आपसे ही मुख़ातिब हैं

पत्रिकाएँ और पुस्तकें ख़रीदकर पढ़ने में जितना मज़ा आता है उतना मुफ़्त में पाकर नहीं। इसलिए जब आप 'विचार दृष्टि' पत्रिका के, नमूना प्रति की माँग करें तो यह लिखना न भूलें कि आप इसकी सदस्यता ग्रहण करना चाहते हैं। पता नहीं क्यों पत्रिकाओं का सदस्य बनना अपना कर्त्तव्य नहीं, लोग उसे मुफ़्त में हासिल करना अपनी अक्लमंदी समझते हैं।

दो वर्षों तक 'राष्ट्रीय विचार पत्रिका' और बाद में भारत के समाचार पत्रों के पंजीयक द्वारा 'विचार दृष्टि' शीर्षक अनुमोदित एवं निर्बाधित होने पर पिछले 08 वर्षों से निरंतर इसकी प्रति आप प्रबुद्ध पाठकों एवं साहित्य-सेवियों के हाथों जा रही है और जिसके तेवर व कलेवर को भी आपने तहेदिल से स्वीकारा है। हमने भी पत्रिका की स्तीयता बढ़ाने की कोशिशें जारी रखी हैं। आप भी इसकी सदस्यता ग्रहण कर इसके नियमित प्रकाशन में अपेक्षित सहयोग करें। यह आपकी गरिमा के अनुरूप होगा और हम भी आपकी आकांक्षाओं एवं विश्वासों के अनुरूप एक स्तरीय पत्रिका आप तक पहुँचाने में समर्थ हो सकेंगे। विगत एवं इस वर्ष भी आपने पत्रिका की सदस्यता ग्रहण में अपनी अभिरुचि दिखाकर हमें प्रोत्साहित किया है। यह आपकी सदाशयता, उदारता एवं सेवाभाव का द्योतक है। हम तहेदिल से आभारी हैं आपने सभी सदस्यों का। अगर आपकी सदस्यता समाप्त हो चुकी है तो एक सौ रुपए भेजकर उसका नवीनीकरण करा लें। हमें आपके क़ीमती मश्विरे का शद्दत से इंतज़ार रहता है।

– उप संपादक

संपादकीय-प्रकाशकीय कार्यालय

'दृष्टि', यू. 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92 • फोन: 011-22059410 / 22530652
'बसेरा', पुरन्दरपुर पटना-800001 • फोन: 0612-2228519

करामत अली 'करामत' की दो ग़ज़लें

(1)

माना कि उन्हें मुझसे मोहब्बत भी नहीं है
यह कैसा ताअल्लुक़ है कि नफ़रत भी नहीं है

ख़ामोश रहूँ भी तो वह जीने नहीं देते
मैं उनसे उलझ जाऊँ, यह आदत भी नहीं है

हैं सारे गवाहों के बयानात भी झूठे
फिर मेरी हिमायत में अदालत भी नहीं है

कैसे मेरी ख़ूबी पे नज़र उसकी टिकेगी?
तस्कीने इना से जिसे फ़ुर्सत भी नहीं है

जी चाहे बुला लें मुझे वह जब भी, जहाँ भी
वह गर न बुलाएँ तो शिकायत भी नहीं है

है दिल में अगर बुग़्ज़ तो आ जाए वह खुलकर
यह कैसी अदावत जो अदावत भी नहीं है

में हाथ बढ़ा दूँ तो मेरा हाथ पकड़ ले
उस शख़्स में इतनी शराफ़त भी नहीं है

मिल-मिल के झगड़न, यह झगड़ते हुए मिलना
रिश्तों को निभाने की यह सूरत भी नहीं है

जो दिल पे गुज़रता है 'करामत' उसे लिख दे
गो हरफ़े बयाँ पर तुझे क़ुदरत भी नहीं है

(2)

मुख़्तारे कुल है मुल्के बसीरत का, ऐ अदीब
क्यों अपने आपको समझने लगा ग़रीब

ताली तो एक हाथ से बजती नहीं कभी
सारा क़ुसूर मेरा है, यह बात है अजीब

तुझको मिला पहाड़ तो कंकर मुझे
वह है तेरा नसीब तो यह है मेरा नसीब

दूरी के साथ जज़्बा-ए-क़ुरबत है हमसफ़र
मंज़िल है दूर, फिर भी तसव्वुर है क़रब

हक़ का अलम बुलंद किया जिसने उम्र भर
हर दौर में मिला है उसे तुहफ़-ए-सलीब

चीता है पीछे और मगरमछ है सामने
जाऊँ कहाँ कि दश्त का है रस्ता मोहीब

तुर्फ़ा तमाशा देखा है अहदे हयात में
जो था कभी रफ़ीक़ वही बन गया रक़ीब

यूँ दर्दे लादवा में 'करामत' है मुबतला
बेज़ार रिश्तदार हैं, मायूस हैं तबीब

ग़ज़ल

○ मनौव्वर राना

मेरी थकन के हवाले बदलती रहती है
मुसाफ़रत मेरे छाले बदलती रहती है

मैं ज़िंदगी में तुझे कब तक बचाके रखूँगा
यह मौत रोज़ निवाले बदलती रहती है

बड़ी अजीब है दुनिया तव्वायफ़ों की तरह
हमेशा चाहने वाले बदलती रहती है

ख़ुदा बचाए हमें मज़हबी सियासत से
यह खेल-खेल में पाले बदलती रहती है

उम्मीद रोज़ वफ़ादार खादिमा की तरह
तसल्लियों के प्याले बदलती रहती है

तुझे ख़बर नहीं शायद कि तेरी रूसवाई
हमारे होंठ के ताले बदलती रहती है

हमारी आरज़ू मासूम लड़कियों की तरह
सहेलियों से दोशाले बदलती रहती है

संपर्क : सी-10, बोलाई दत्त स्ट्रीट,
कोलकाता- 700073

बुग़्ज़ - द्वेष, हरफ़े बयाँ - अभिव्यक्ति, मुख़्तारे कुल - पूर्ण सवामी, बसीरत -दीव्य दृष्टि, जज़्बा-ए-क़ुरबत - निकटता -भाव, अलम - झंडा, दश्त - जंगल, मोहीब - ख़ौफ़नाक, तुर्फ़ा तमाशा -अनोखी घटना, रफ़ीक़ - दोस्त, रक़ीब - प्रेसी का प्रेमी, तबीब - डॉक्टर।

संपर्क : रहमत अली बिल्डिंग, दीवान बाज़ार, कटक - 753001 (उड़ीसा)

'प्रेरक प्रसंग'

राजू सिविल सेवा में अव्वल

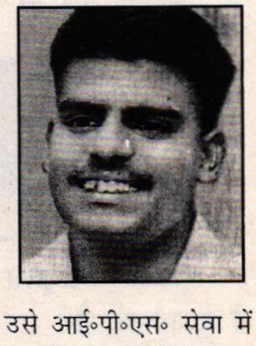

संघ लोक सेवा आयेग द्वारा आयोजत सिविल सेवा परीक्षा 2006 में आँध्र प्रदेश के एक अत्यंत पिछड़े एवं दुर्गम चिन्नगोपालय गाँव का निवासी 27 वर्षीय रेव मुथ्याला राजू ने प्रथम स्थान प्राप्त कर प्रेरणा का स्रोत बन गया है। तेलुगु माध्यम के एक टीन-टप्पर के सरकारी स्कूल से पढ़ाई करके पिछड़ी जाति के राजू का आई॰ए॰एस॰ टॉप करना एक ऐसी सूचना है जिससे किसी भी भारतीय की छाती गर्व से फूल जाएगी। कृष्णा और गोदावरी नदियों से घिरे राजू के गाँव में आज भी जब बाढ़ आती है तो देश-दुनिया से उसका संपर्क टूट जाता है। एक भयानक बाढ़ में राजू भी अपनी बहन और कई मित्रों को खो चुका है। गाँव के स्कूल से दसवीं पासकर राजू ने पोलिटेक्निक में नामांकन कराया और भारतीय इंजीनियरिंग सेवा की परीक्षा देकर उसमें प्रथम स्थान प्राप्त किया। भारतीय प्रशासनिक सेवा में 223 वाँ स्थान प्राप्त करने पर उसे आई॰पी॰एस॰ सेवा में राजस्थान कैडर मिला, जिससे वह संतुष्ट नहीं हुआ और उसने शिखर का ख़्वाब देखा। अपने ख़्वाब को उसने 2006 की सिविल परीक्षा में प्रथम स्थान प्राप्त कर साकार किया। उसने आँध्र प्रदेश कैडर को चुना ताकि अपने पिछड़े गाँव का कुछ भला कर सके।

जिस समय देश में मंडल आयोग की बहस चल रही थी, मीडिया में बैठे विद्वज्जन इसे देश की प्रतिभा का अवमूल्यण बता रहे थे, पिछड़ी जाति के राजू ने अपनी येग्यता और प्रतिभा का लोहा मनवाकर दिखला दिया है कि इस देश के पिछड़े इलाक़ों में भी कैसे-कैसे रत्न छिपे है और उनके शीर्ष प्रशासनिक सेवाओं में पहुँचने का भारतीय समाज के लिए क्या मतलब हो सकता है। प्रतिभावान एवं संकल्पपुरुष राजू को 'विचार दृष्टि' परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

- उदय कुमार 'राज़' दिल्ली से

मैंने कहा उसने कहा

○ दिलावर फ़ुगार

मैंने कहा कि शहर के हक़ में रहा करो
उसने कहा कि बात ग़लत मत कहा करो
मैंने कहा कि रात से बिजली भी बंद है
उसने कहा कि हाथ से पंखा झला करो
मैंने कहा कि शहर में पानी का क़हत है
उसने कहा कि पेप्सी 'कोला पिया करो
मैंने कहा कि कार डकैतों ने छीन ली
उसने कहा कि अच्छा है पैदल चला करो
मैंने कहा कि काम है न कोई कारोबार
उसने कहा कि शायरी पर इक्तफ़ा करो
मैंने कहा कि सौ की भी गिनती नहीं है याद
उसने कहा कि रात को तारे गिना करो
मैंने कहा कि है मुझे कुर्सी की आरज़ू
उसने कहा कि आयतल कुर्सी पढ़ा करो
मैंने कहा कि ग़ज़ल पढ़ी जाती नहीं सही
उसने कहा कि पहले रिहर्सल किया करो
मैंने कहा कि कैसे कही जाती है ग़ज़ल
उसने कहा कि मेरी ग़ज़ल पढ़ा करो
हर बात पर जो कहता रहा मैं "बजा! बजा!"
उसने कहा कि यूँ ही मोसलसल बजा करा

हक़ : पक्ष, क़हत : संकट, इक्तफ़ा : संतोष, आयतल कुर्सी : कुरानपाक की एक आयत (श्लोक), बजा : ठीक

इनतज़ार

प्रो॰ शमशाद हुसैन

इस जहाँ में कौन करता है किसी का इंतज़ार
कहने को बस कह दिया तेरे लिए थे बेक़रार
ज़िंदगी की बज़्म है यह किसको फ़ुर्सत है यहाँ
कौन किसकी राह देखे किसको मोहलत है यहाँ
इसलिए ते कह रहा हूँ मेरे साथी मेरे यार
इस जहाँ में कौन करता है किसी का इंतज़ार
कितना झूठा था यह वादा उम्र भर का साथ है
आज उनके हाथ में इक अजनबी का हाथ है
वह जो कहते थे सदा कि प्यार होता एक बार
इस जहाँ में कौन करता है किसी का इंतज़ार
वक्त जब तक साथ है तो सारी दुनिया साथ है
हाथ में जब जाम हो बढ़ता हुआ हर हाथ है
इस जहाँ में कौन करता है किसी का इंतज़ार
गर क़दम बढ़ते रहे तो रोज़ोशब सौग़ात है
रहबरी का है भ्रम और रहबरों का साथ है
बढ़ गया जब कारवाँ पीछे न देखे एक बार
इस जहाँ में कौन करता है किसी का इंतज़ार
हो गया शमशाद एहसासे परेशानी मुझे
दे गई इक नफ़सियाती बात हैरानी मुझे
मिल गया इक आदमी जो कर रहा था इनतज़ार
इस जहाँ में कौन करता है किसी का इनतज़ार

संपर्क : प्रोफ़ेसर्स फ़्लैट, त्रिपोलिया, पटना

ग़ज़ल

○ मो॰ सुलेमान

इक तिली से मकां जल गया,
आह से आसमां जल गया।
चंद तिनको से जो था मकां
आज वह आशियां जल गया।
आग दुश्मन के दिल में लगी
पर मेरा गुलस्तिां जल गया।
आग को सब बुझाने लगे,
या खुदा! बागवां जल गया।
गैस चंबर वही हिटलरी,
आह! सब कारवां जल गया।
आग बालू से बारूद की,
ताज उनका जहां जल गया।
हक़ पे ग़ालिब न बातिल रहा,
देख, रावण वहाँ जल गया।
सिदरतुल मुतहा तक गए,
पर मलक का जहां जल गया।
आज मंसब से सुलेमां तेरे,
क्यों तेरा राज़दां जल गया।

संपर्क : अपर समाहर्ता, बेतिया, प॰ चंपारण

पिल्लै की दो कविताएँ

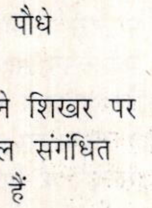

प्रकृति

हे गुलाब के पौधे
माना
कि तूने अपने शिखर पर
सुंदर सुकोमल संगंधित
कुसुम उपजे हैं
पर तेरे शिखरों पर
जो पैने तीखे क्रूर कंटक
उभर आए हैं
वे तेरी छवि पर
कालिख मल रहे हैं।
जानता हूँ
तू निस्सहाय है, विवश है
लाचार है
अपनी प्रकृति को
कौन बदल सकता है।

बाण

अब
बाणों की चोट
मुझे घायल नहीं कर सकती।
मगर तन
चारों ओर से
बाणों से घिरा है
शर-शय्या पड़े भीष्मपितामह ही
शायद मेरी पीर को महसूस कर
पाएँ।

संपर्क : के॰ जी॰ बालकृष्ण पिल्ल
गीता भवन, पेरूर काटा,
तिरुवनंतपुरम- 695005

मानवता का सूर्य उगायें

○ पुरुषोत्तम 'पुष्प'

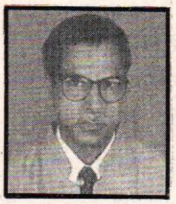

नवल विपल विस्तार, सृष्टि-रथ सादर वंदन।
हे नव संवत् ! तेरा कोटि-कोटि अभिनंदन।।

प्राची में अरुणोदय, कुमकुम- थाल सजाए,
ऊषा ने नभ से अरुणिम प्रसून बरसाए।
प्रमुदित विटप- लता ने शुभ तोरण लटकाए,
सरिता-सागर उमग ज्वार उर्मिल लहराए।

नव विहान की वेला गमके, ज्यों चंदन वन,
हे नव संवत् ! तेरा कोटि-कोटि अभिनंदन।।

मलय-झकोरें, अतिथि-शिष्ट से स्वागत करते,
हिम-गिरि के उत्तुंग शिखर, अभिवादन करते।
बैठ वृंत पर विहग-वृंद मिल मंगल गाते,
कल-कल करते निर्मल झरने, चरण धुलाते।

हर्षित हो वन-जीव, नाचते-गाते वन-वन।
हे नव संवत् ! तेरा कोटि-कोटि अभिनंदन।।

जग में, हे गत-वंशज! अमन-राग सरसाओ,
झोंपड़ियों की पीड़ा, महलों को समझाओ।
वर्ग-द्वेष कर दूर, हृदय मिलाओ,
धरती पर समरसता की मधु-धार बहाओ।

दो ऐसा अवदान, विश्व हो, सजग चिरंतन।
हे नव संवत् ! तेरा कोटि-कोटि अभिनंदन।।

पूरब-पश्चिम मिलकर प्रेम-गंध बिखराएँ,
उत्तर-दक्षिण सब धर्मों के छंद सुनाएँ।
समाओं को तोड़, शांति का विश्व रचाएँ,
उसके नभ में मानवता का सूर्य उगाएँ।

स्वपन करो साकार, काल के हे लघुतम क्षण।
हे नव संवत् ! तेरा कोटि-कोटि अभिनंदन।।

संपर्क : 31, शाकुंतलम्, गणपति ज्योतिष अनुसंधानकेंद्र, कीर्ति नगर, नज़दीक शिव मंदिर, महम मार्ग, भिवानी (हरियाणा)
दूरभाष : 9416525637

जाकर उधर बैठे

○ हितेश कुमार शर्मा

फ़रेबे ज़िंदगी पर हर घड़ी इतबार कर बैठे
ग़ज़ब है धूप से हम छाँव की दीवार कर बैठे।

तर्के तआल्लुक़ से हुआ अंतर हितेश इतना
इधर जो बैठे थे आज वो जाकर उधर बैठे।

वफ़ा से बेवफ़ाई के सफ़र का दर्द था शायद
चुराकर आँख महफ़िल में झुकाकर वो नज़र बैठे।

फ़क़त इतना कहा था आप कल शब को कहाँ थे
बस इतनी बात पर मुँह फेरकर वो रूठ बैठे।

हमारी ही ख़ता है लुट गए हम राहे उल्फ़त में
न जाने हम समझ क्यों राहज़न को राहबर बैठे।

शहर तो हादसों या फ़क़त आतंकियों का है
बचे जो शेष वह है जैसे आग पर बैठे।

ज़माना सुन रहा था ग़ौर से आफ़सान-ए-दिल को
हमीं इक मोड़ पर हो बुख़ुदी में मुख़्तसर बैठे।

शहंशाहों-फ़क़ीरों सी तबीयत पाई थी यानी
जहाँ पर मन हुआ डेरा वहीं पर डालकर बैठे।

संपर्क : गणपति कॉम्पलैक्स,
सिविल लाइन, बिजनौर

हे देव

○ डॉ॰ मंजुला गुप्ता

एक अक्षुण दृष्टि डालो, तुम मुझ पर
हे देव! तनिक, वृष्टि कृपा की कर दो मुझपर
दिगभ्रमित हो जाऊँ यदि मैं
भटकूँ राह न पाऊँ
पाप पुण्य के असमंजस में
पथ-भ्रमित मैं क्षण-क्षण होऊँ
हत भागी सा बन-बन डोलूँ
फिर-फिर अतीत में खोऊँ
फैला चादर जब नैराश्य की
तम में घिर-घिर जाऊँ
खाली गगरी अँध कूप से
भर-भर अभाग्य को लाऊँ
पंख कटे पक्षी-सा गिर मैं
पल-पल धरा पर लड़पूँ
श्वांस रुके, उससे पहले तुम
दौरे मुझ तक आना
गज ग्रह ही अमर कहानी
मुझसे सच-सच कहना।

संपर्क : 9 बी॰सी॰ रोड, बाईस गोदाम
सर्किल, जयपुर, राजस्थान

गीतिका

○ रमेशचंद्र शर्मा 'चंद्र'

आकृति सुंदर प्यारी है
मन में छिपी कटारी है

कहता कुछ, करता कुछ है
नस-नस में हुशियारी है

वह क्या बढ़कर बात करे?
जिसकी लाज उधारी है

मुस्कानों के जल्वे में
फँसने की तैयारी है

टूट गया पर झुका नहीं
प्राणों में ख़ुद्दारी है

खाओ और खिलाओ भी
यह संस्था सहकारी है

विरह गीत गाता अक्सर
लगता प्रेम-पुजारी है

देश-भक्ति अब दुर्लभ है
चमक रही गद्दारी है

कितनी पीड़ाएँ सहकर
लिखती है, मतिमारी है

दाँव लगाता जीवन का
प्रेमी? एक जुवारी है

संपर्क : डी-4, उदय हाऊसिंग,
सोसायटी, वैजलपुर,
अहमदाबाद-380051

दिशाहीन जुलूस

○ डॉ० जनार्दन यादव

संस्कृति की बोटी-बोटी काटकर
सभ्यता को चाट-चाटकर
गुज़रे जुलूस के हाथों
रक्त तीक्ष्ण चमकते हथियारों
हिंस की कालिख पुते चेहरों के बीच
कोई इंसान नज़र नहीं आया।
वे लगा रहे थे नारे
अपने धर्म-क़ौम के लिए
अपने ही दिल को बाँट रहे थे
और अपनी ही माता के स्तन के पय को
सबसे तुच्छ बता रहे थे
उनके पेट में आग थी
और आँखों में शोले
लेकिन इससे बेख़बर
वे पाल रहे थे हैवानियत को
उनके ज़ुल्म व आतंक के नग्न नृत्य से
हरियाली और रास्ते
कब-कब रक्त रंजित हुए
स्वयं उसे भी याद नहीं
उनकी वाणी में ज़हर घुला है
वे नहीं जानते कि उनसे
राम-रहीम को भी शिकवा-गिला है
भाइयो! उन्हें निकट से पहचानो
हिथयारों को आगे बढ़ने से रोको
ढाह दो जाति-मज़हब की दीवारें
क्योंकि उन्होंने जो दिखाया सब्ज़ बाग़
उसमें बैठा हुआ काला नाग
सिर्फ़ डंसना ही जानता है ...
मानवता के दामन पर
लग जाती बहुत जल्द दाग़
उसे विरल ही धो पाता
कालपुरुष्र हो जाता है
दिशाहीन जुलूस को पता नहीं कि
वह दूसरे को मारने या मरने जा रहा है
उसके अंध नृत्य को रोको
यह जुलूस नहीं
हिंसाक पदार्थ है
प्रजातंत्र का दुश्मन है।

संपर्क : रतपतगंज, अररिया- 854335

दुल्हन का शृंगार

—विनोद कुमार झा

हिंदी अगर हिंद की दुल्हन है,
तो इस दुल्हन का शृंगार है उर्दू।।
हिंदी दुल्हन के माथे की बिंदी है,
तो गले का नौलखा हार है उर्दू।।
हिंदी अगर हिंद का बाग़े गुल है,
तो बाग़े बहार है उर्दू।।
हिंदी अगर पवित्र गंगा जल है,
तो सिंधु की मीठी धार है उर्दू।।
हिंदी अगर माँ भगवती की वीणा है,
तो वीना की मधुर झंकार है उर्दू।।
हिंदी अगर माँ भगवती की आला है,
तो आत्मा की मृदुल पुकार है उर्दू।।
हिंदी अगर माँ भगवती का नेत्र है,
तो नेत्र के काजल की धार है उर्दू।।
हिंदी अगर हिंद का कमल दल है,
तो इस हिंद का कचनार है उर्दू।।
हिंदी अगर हिंद का आम्रफल है,
तो हिंद का ललितफल अनार है उर्दू।।

संपर्क : अधीक्षक उत्पाद, समाहरणालय,
बेतिया, पश्चिमी चम्पारण (बिहार)

स्वर्ण विहान का तूलारे सवेरा

○ डॉ० हीरालाल नंदा 'प्रभाकर'

ये देश में है हाहाकार रे वीरा।
अब जीना है ... दुश्वार रे वीरा।।
ये रामा युग नहीं है रे वीरा।
है ख़ौफ़, भय चहुंओर रे वीरा।।

ये महामक्कार संसार है रे वीरा।
अपने नैनन देश, अन्याय रे वीरा।।
लंपटों का ये युगमें शोर रे वीरा।
सरेआम क़त्लआम बेशुमार रे वीरा।।

अपनावेगा किसे छोड़ भाग रे वीरा।
यह मतलब का है रे संसार कबीरा।।
द्वेष, नफ़रत की यहाँभरमार रे वीरा।
जननेता सभी गद्दार रे वीरा।।

श्विास कहाँ यहाँ किसी प रे वीरा।
जीतेजी घुटती यहाँ सवाश रे वीरा।।
माँ-बहनों की कहाँ इज़्ज़त रे वीरा।
जहाँ होवे रोज़ बालात्कार रे वीरा।।

यह कैसी शान दे दिया तू रे वीरा।
शर्मनाक नहीं तो ये क्या है रे वीरा।।
उठ तू मिटा ये देश से रे अँधेरा।
सवर्ण विहान का तू ला रे वीरा।।

संपर्क : अजय अपाटेंट, फ़्लैट न० 2,
वन कलयान नगर, मालाड (प०),
मुंबई - 400015

अतीत की याद

अभी कल ही की तो बात है
मैंने तुम्हें देखा, चाहा और सराहा
फिर!
तुम्हारी चाह भी तो मेरी हो गई थी।
मैं तुममें और तुम मुझमें खो गई थी।
दोनों वर्षों साथ चलते रहे
अपनी सुध-बुध में खोए हुए
दिन, महीनों और वर्षों
यह क्रम चलता रहा
सूरज निकलता और ढ़लता रहा
अब हम दो से एक हो चुके थे।
सहसा
एक वज्रपात हुआ
समाज के ठेकेदारों द्वारा आघात हुआ
पता चला
हम
नदी के दो किनारे बन गए थे
एक दूसरे से
पास रहकर भी कितने दूर हो गए थे
अब तो समय की धारा के साथ चल रहे हैं
हृदय में एक टीस लिए।
सूरज आज भी निकलता है
परन्तु आज उसमें एक तपिश नहीं है
यादों के झरोखे से देखता हूँ
तो ढ़लती नजर आती है
जिन्दगी की बुनियाद
और मानस पटल पर
अंकित हो जाती है
वह अतीत की याद

—उदय कुमार 'राज़'

DENSA
PHARMACEUTICALS PVT. LTD.

Fact. Add. :Plot No. 10, Dewan & Sons Udyog Nagar,
Taluka Palghar, Dist. Thane, MAHARASHTRA

Phone No.: (952525) 55285, 54471, Fax: 55286

&

DANBAXY
PHARMACEUTICALS PVT. LTD.
(SOFT GELATIN)

Fact. Add: Plot No. K-38, MIDC Tarapur,
Dahisar, Dist. Thane, MAHARASHTRA

Office Address:

1, Anurag Mansion, Ashokvan,
Shiv Vallabh Raod, Dahisar (E),
Mumbai-400068
Phone No.: 28974777, Fax: 28972458
MR. DEVENDRA KUMAR SINGH, C.M.D

संस्मरण और राजस्थान का महिला संदर्भ

○ डॉ॰ फ़रज़ाना सुलताना

राजस्थान में हिंदी लेखिकाओं की सिरमौर शकुंतला कुमारी 'रेणु' गद्य एवं पद्य पर समान एकाधिकार रखती हैं। 'रेणु' जी की संस्मरण लेखन में विशेष रुचि रही है। अपने संस्मरणों में उन्होंने संस्मरणीय व्यक्ति के प्रति आत्मीयता का परिचय दिया। उनके संस्मरण की रोचक एवं प्रभावशाली शैली भी प्रशंसनीय है। इसके अतिरिक्त उनके संस्मरणों में अत्यधिक आत्मनिष्ठा भी पाई जाती है। इस संबंध में उनके दो संस्मरण उल्लेखनीय हैं। पहला संस्मरण 'स्मृति-यात्रा' के शीर्षक से लिख गया, जिसमें उन्होंने अपने पिता पंडित गिरिधर शर्मा 'नवरत्न' के निधन पर श्रद्धांजलि स्वरूप आपने प्रस्तुत किए।

'रेणु' जी का दूसरा प्रसिद्ध संस्मरण 'संत विनोबा पाटन पधारे' के शीर्षक से मिलता है। यह संस्मरण यद्यपि बहुत संक्षिप्त है, किंतु 'रेणु' जी की प्रभावशाली शैली ने इसमें चार चाँद लगा दिए हैं। इस संस्मरण में संत विनोबा भावे द्वारा झालरापाटन तक की गई पदयात्रा का विवरण प्रस्तुत किया गया है। डॉ॰ कन्हैयालाल शर्मा संस्मरण के संबंध में लिखते हैं;

''संत विनोबा भावे पधारे' शकुंतला 'रेणु' का आकर्षक संस्मरण है। 'जा दिय संत पाहुन आवत' के कवि ने रेखांकित किया है कि उस दिन सारे पाप धुल जाते हैं ...। संत विनोबा का लेखिका की जन्म-भूमि पर पधारना इसलिए भी महत्त्वपूर्ण घटना बन जाती है कि पाटन में दो महानुभावों का मिलन होता है-संत विनोबा भावे एवं लेखिका के नेत्रहीन वृद्ध पिताश्री प्रसिद्ध कवि गिरिधर शर्मा का। संस्मरण में लेखिका की पीड़ा व्यक्त हुई कि पिताश्री की आज्ञा की अप्राप्ति से वह विनोबा मण्डली में सम्मिलित नहीं हो सकीं। संक्षिप्त, पर मार्मिक प्रसंग ने संस्मरण लेखन की प्रेरणा दी है।''

सावित्री परमार ने अपनी संस्मरणीय रचनाओं को संवेदनात्मक तथा मनोरंजक बनाने का प्रयास किया। उन्होंने अपने संस्मरणों को जीवनी बनाने से भी रोका है। प्राय: देखा गया है कि लेखक या लेखिकाएँ अपने संस्मरण को त्रुटिवश जीवनी बना देते है। जबकि होना यह चाहिए कि संस्मरण जीवन की किसी घटना विशेष का निरूपण मात्र हो। इस दृष्टि से सावित्री जी का संस्मरण 'अप्रमित शब्द-शिल्पी : श्री रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' '...' उत्कृष्ट कृति है। यह संस्मरण सावित्री जी ने आकाशवाणी, जयपुर द्वारा आयोजित 'सर्व भाषा काव्य सम्मेलन' में पधारे रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' को संस्मृत साहित्यकार रूप में चित्रित किया है। लेखिका ने अतिथि बनकर आए 'अंचल' की मनमौजी फक्कड़ प्रकृति और काव्य-प्रतिभा को उजागर किया है। उनके सान्निध्य में बिताए गए क्षण एवं सुनी गई कविताओं में संस्मरणीय है। कथापकथनों का आधिक्य संस्मरण की यर्थाथता पर प्रश्न चिह्न लगाता है, पर 'अंचल' जी का काव्य-पाठ उसे कलात्मकता प्रदान करता है।''

सावित्री जी का एक अन्य संस्मरण 'ओजस्वी स्वरों में गुंफित मेघराज 'मुकुल' का काव्य संस्कार' के शीर्षक से राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'मधुमती' के नवंबर 1984 ई॰ के अंक में प्रकाशित हुआ। इस संस्मरण में सावित्री जी ने 'मुकुल' जी की 'उमंग' (1954), 'सेनाणी री जागी जोत' (1967), 'किरत्या' (1968), 'अनुगूँज' (1968), 'गीत निरंतर' (1982), 'असमर्थ आत्मा के बोल' आदि कृतियों में मानवीय मूल्य, भावबोध, वैचारिक गतिशीलता, शब्द परिवेश, राष्ट्रधर्म, मानव धर्म का विवेचन एवं तत्संबंधी एक छोटा-सा साक्षात्कार किया है।''

सावित्री जी अपने उक्त संस्मरणों में अतीत में घुली-मिली अनुभूतियों की सशक्त अभिव्यक्ति करने तथा मानसिक मनोभावों को भलीभांति उकेरने में सफल रही हैं।

सरला अग्रवाल के संस्मरणों में उनकी अंतरंग व्यक्तिकता पर आधारित भावनाओं ने इन संस्मरणों में नई रूह का संचार करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त मर्मस्पर्शी तथा कोमल अनुभूतियों ने भी सरला जी के संस्मरणों को सशक्तता प्रदान की है। देश के प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में उनके संस्मरण निरंतर प्रकाशित होते रहे, जिनमें उनके संस्मरणों की हिंदी साहित्य के सुधी आलोचकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की;

(1) 'एक थी आम्मा' प्रकाशित 'नवनीत डायजेस्ट' मार्च 1978, नई दिल्ली। (2) 'शताब्दी महापुरुष : डॉ॰ रामचरण महेंद्र', प्रकाशित 'शताब्दी पुरुष' संपादक श्री सुरेश वर्मा (कोटा) (3) जादुई व्यक्तित्व के धनी : डॉ॰ वधान', प्रकाशित 'शब्दशिल्पी स्मारिका, संपादक डॉ॰ प्रमीला शुक्ला 'किरण' (4) 'हमारे प्रेरणा स्रोत' प्रकाशित 'शब्द-प्रसून', संपादक श्री सुरेश वर्मा (कोटा) (5) 'शेष हैं केवल स्मृतियाँ', प्रकाशित 'स्मृतिगंधा' संपादक श्री सुमति जैन (अलवर)।

सरला जी के संस्मरणों का संग्रह 'स्मृतियों का सफ़र' शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। इस संग्रह में सत्ताईस वरिष्ठ तथा युवा साहित्यकारों से संबंधित संस्मरण सम्मिलित हैं। इन संस्मरणों में सरला जी की भाषा अति प्रांजल और चित्रात्मक है, जो पाठकों का मन मोह लेती है। श्री विजय जोशी 'स्मृतियों का सफ़र' पर अपने विचार प्रकट करते हुए लिखते हैं कि यह ऐसा संकलन है जिसमें ''सत्ताईस साहित्यकार मनीषियों के संपर्क में आने के अंतरंग प्रसंग हैं। यह संकलन साहित्यकारों के जीवानुभाव, विचारधर्मिता, जीवन मूल्यों के प्रति उनकी दृष्टि, रचना प्रक्रिया इत्यादि के संबंध में विवरण प्रस्तुत करता है।''

श्रीमती पुष्पलता कश्यप ने भारतेंदु हरिश्चंद्र की परंपरा का निर्वाह करते हुए आत्मकथात्मक संस्मरण लिखने की कोशिश की। साहित्यकारों, दिवंगत मनीषियों और महान् चिंतकों पर अपना जो संस्मण लिखे उनका साहित्यिक महत्त्व आलोचकों ने भी स्वीकारा है। पुष्पलता जी ने पत्र शैली में भी सफल संस्मरण लिखे हैं।

''स्नेहिल बहिन,

तुम्हारा पत्र मिला। दिल बेहद उदास हो गया है। बहिन, मैं तुम्हारी और नवजात बच्चे की दीर्घ आयु की कामना करता हूँ। हालांकि बाल-विवाहों के दुष्परिणामों को समक्ष रखते हुए यह दुरासा मात्र है। लेकिन, फिर भी भाई जो हूँ तुम्हारा।''

पुष्पलता जी की कलात्मक चतुराई ने उनके संस्मरणों को चर्चा का विषय बना डाला है। आत्मीयता की गहनता उनके प्राय: सभी संस्मरणों में विद्यमान है। डॉ॰ सावित्री डागा ने पुष्पलता जी के संस्मरण 'रनकवाड़ा' की गणना ऐसी रचनाओं में की है जिनमें केवल भाषा शिल्प की गरिमा

के ही दर्शन होते हैं, अपितु रचनाकार की उस गहरी अंतर्दृष्टि से भी साक्षात्कार होता है, जो अपने परिवेशगत यथार्थ का छिद्रान्वेषण कर उसकी मार्मिक संवेदना को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करती है। समाज, व्यवस्था व प्रतिष्ठा के स्तर पर पसरता हुआ अनैतिकता का भस्मासुर, चारों ओर फैलती कर्त्तव्यहीनता, नीति-नियमों की अराजकता, नारी की करुण दशा आदि के प्रति एक सहज आक्रोश इन रचनाओं में है।''

शशिबाला जी ने अतीत की स्मृतियों को यथार्थ एवं भावुकता का पुट दिया है। शशि जी ने अधिकतर व्यक्ति परक संस्मरण लिखे हैं। इस संबंध में उनका संस्मरण 'नमन इन्हें भी' उल्लेखनीय है। उन्होंने संस्मरणों की रचना मनोरंजन मात्र की दृष्टि की बजाय किसी व्यक्ति विशेष के प्रति श्रद्धा की भावना युक्त करनी चाही है। यदि संबंधित व्यक्तित्व की विराटता देखनी हो, तो उनके संस्मरण 'नमन इन्हें भी' का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है, जिसमें उन्होंने डूंगरपुर निवासी श्री नानाभाई खाटक के द्वारा आदिवासियों में राष्ट्रीय चेतना का बीजारोपण करने के प्रयास का चित्रण किया है। भाषा की सहजता ने इस संस्मरण को और भी सशक्त बना दिया है। यथा;

''बंद मुट्ठी से फिसलती रेत की तरह बीता जा रहा है। जीवन का क्षण-प्रतिक्षण ... अतीत जो व्यतीत हो चुका है आज भूत है, इतिहास है जिसे सिर्फ़ कुरेदा जा सकता हे, शीत-तप्त उच्छवासों से सहलाया जा सकती है मगर लौटाया नहीं जा सकता।''

डॉ॰ उषा भार्गव ने आत्मीसंस्मरण अधिक लिखे हैं, जिनमें सहज आत्मीयता के साथ-साथ गांभीर्य दृष्टिगोचर है। उनके संस्मरण व्यंजक और संकेत शैली से सजे-धजे होते हैं तथा उनमें अनंत और रमणीय अनुभूतियों के सजीव चित्रण होते हैं। उनके संस्मरण में देश, काल तथा पात्रों का समांजस्य प्रशंसनीय है। 'क्या भूल सकूँगी उनको' उषा जी का पात्र-प्रधान संस्मरण है, जिसके संस्मृति 'वयोवृद्ध प्रसिद्ध साहित्यकार उपेंद्र नाथ 'अश्क' हैं। इलाहाबाद प्रवासकाल में लेखिका 77 वर्षीय जर्ज स्वास्थ्य युक्त 'अश्क' जी का स्वल्प-सा परिचय देती हैं, पर 'विनय की बातें' द्वारा बहुत कुछ पहले कह जाती हैं। मानो प्रत्यक्ष परिचय तो पूर्वकथित का साक्षी भर हों संस्मरण में कथ्य की स्वल्पता निराशाजनक है, पर प्रस्तुति में आकर्षण है।''

इस संस्मरण में 'अश्क' जी के प्रति उषा जी की सम्मान तथा श्रद्धा की भावना सर्वत्र द्रष्टव्य है-

''श्री उपेंद्रनाथ 'अश्क' हिंदी जगत् के वयोवृद्ध, लेकिन ऐसे जीवंत रचनाकार, जो साहित्य की अनेक विधाओं में लिखने के अलावा कलाकार, अभिनेता, पटकथा-लेखक, संवाद-लेखक तथा गीतकार भी रहे। ... 'अश्क' जो हिंदी, उर्दू और पंजाबी तीन-तीन भाषाओं में लिखते हैं और ज़रूरत पड़ने पर अँग्रेज़ी को भी अव्यिक्ति का माध्यम बनाने में नहीं चूकते। 'अशक' जो अध्यापन, पत्रकारिता, संपादन, वकालत, आकाशवाणी और दूरदर्शन से जुड़े रहे हैं। ... 'अश्क', जो अपने प्रकाशन को जमाने की ख़ातिर किताबों का बैग लिए पूरे देश में दौरे करते रहे।''

श्रीमती चमेली मिश्र ने अपने संस्मरणों में संबंधित व्यक्तियों के स्मृत्याधृत अनुभूतिपरक चित्र प्रस्तुत किए हैं। उनके अधिकांश संस्मरणों में मानवतावादी स्वर मुखरित होता है। मनोरंजकता, सूक्ष्मता तथा शब्द चयन की कला से परिपूर्ण उनके संस्मरण उल्लेखनीय हैं। भाषा उनके संस्मरणों का आधार स्तंभ हैं। उनके कुछ प्रमुख संस्मरण ये हैं। (1) 'चमेली' प्रकाशित 'बूंद-बूंद स्याही' संपादक पुरुषोत्तमलाल तिवारी। (2) 'प्रेम का सागर' प्रकाशित 'समय के हस्ताक्षर' संपादक अवध नारायण मुद्गल (3) 'स्मृति की दीपशिखा' प्रकाशित 'रेती के रात-दिन' संपादक प्रभाकर माचवे (4) 'रामलाल चाचा' प्रकाशित 'खुले पंखें का आकाश' संपादक डॉ॰ भगवतीलाल व्यास।

'चमेली' संस्मरण में चमेली जी ने अपने बचपन की मार्मिक स्मृतियों का वर्णन किया है, तो 'प्रेम का सागर' में नब्बे वर्षीया अनपढ़ नानी की स्मृतियों को सजोया गया है। आज उनकी यादें शेष हैं। दुनिया में ऐसा निश्छल प्यार कहाँ मिल सकता है। वह तो प्यार का सागर थीं।''

'स्मृति की दीपशिखा' में लक्ष्मी नामक एक अभागी लड़की का वर्णन किया गया है जिसका विवाह उसकी कुरूपता के कारण नहीं हो पाता। अत: वह विवाह का विचार त्याग कर अपनी तीन छोटी बहिनों के भरण-पोषण और शिक्षा-दीक्षा में व्यस्त हो जाती है।

श्रीमती दुर्गा भण्डारी द्वारा लिखित संस्मरणों में भावात्मकता तथा विवेचनात्मकता पाई जाती है। वह सजीव संस्मरणों के लिए प्रसिद्ध हैं। दुर्गा जी के संस्मरणों के पात्र कल्पित होते हुए भी जीते-जागते तथा चलते-फिरते प्रतीत होते हैं। भाषा-प्रवाह और माधुर्य के सामंजस्य ने उन्हें संस्मरणों के महत्त्व को अधिक बढ़ा दिया है। यथा-

''कक्षाओं के दरवाज़े और खिड़कियाँ बंद थे ताकि इस जानलेवा सर्द हवा से कुछ बचा जा सके तथा उन बालकों को थोड़ी राहत तो मिले जो अभावों में गर्म कपड़े न पहन पाने के कारण सर्दी को चिढ़ाते हुए गर्व से बैठे ठिठुरन को भी बर्दाश्त करते रहते हैं। पर यह क्या? कक्षा दसवीं के बाहर एक छात्रा जानलेवा सर्दी में और वह भी एक स्कर्ट और ब्लाउज में खड़ी कंपकंपा रही थी या कि सर्दी उसे चिढ़ा रही थी।''

प्रभा रानी शर्मा अपने संस्मरणों की संक्षिप्तता, संवेदनात्मकता और सरसता के लिए लोकप्रिय हैं। हिंदी साहित्य के आलोचकों, समालोचकों तथा पाठकों ने प्रभा जी द्वारा सृजित संस्मरणों से भरपूर रसास्वादन किया है। इसका मुख्य कारण यह है कि प्रभा जी ने संस्मरणों में स्वयं की अपेक्षा उस व्यक्तित्व को महत्त्व दिया, जिसके संबंध में संस्मरण लिखा गया। उनका सबसे प्रसिद्ध संस्मरण 'मेरा प्रिय संस्मरण' शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इस संस्मरण में प्रभा जी ने 1976-77 में क्षेत्रीय महाविद्यालय, अजमेर में शिक्षा काल की स्मृतियों को समेटा है। उनका यह कहना कितना सच है कि

''याद एक धागा है जो काल के चक्र पर निरंतर लिपटा ही चला जाता है, कभी जब वह टूट जाता है तो हम कोई नई रूई रूपी भाव से उसे पुन: जोड़कर एक निराले आनंद का अनुभव करते हैं। जीवन भी किस तेज़ी से भागता है। देखते ही देखते एक दशक पूरा हो आया। कल के पौधे आज पेड़ बन गए हैं और कल के बच्चे आज जवानी की दहलीज़ पर क़दम रखने लगे हैं।''

स्मृति शेष, डॉ॰ अज़रा ख़ान 'नूर' के संस्मरणों में आकार-प्रकार, भाव-भंगिमा, व्यवहार, जीवन के प्रति दृष्टिकोण, रूपरंग, स्वभाव, समकालीन व्यक्तियों से संबंध आदि का यथातथ्य रूप प्रदर्शित होता है। आत्मीयता, कलात्मकता और विश्वसनीयता आदि गुण अज़रा जी के संस्मरणों में विद्यमान हैं। यद्यपि संस्मरण का संबंध बहिर्जगत से होता है, परंतु उनके संस्मरण अंतर्जगत को भी छूते हुए प्रतीत होते हैं। इस संबंध में उनका प्रसिद्ध संस्मरण 'यादों के आइने से' उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। इस संस्मरण पर टिप्पणी करते हुए डॉ॰ कन्हैयालाल शर्मा लिखते हैं-

''यादों के आइने से' संस्मरण की लेखिका डॉ॰ अज़रा नूर शोध छात्रा रही हैं। अपने शोध गुरु डॉ॰ कृष्णानंद जोशी की, जिनकी विद्वता, सज्जनता, शालीनता और व्यवहार में सहजता आदि गुणों ने लेखिका द्वारा यह रचना लिखवाई है। शोध-छात्रा एवं शोध-निर्देशक के पारस्परिक परिचय में इतनी घनिष्ठता उभर आती है कि शोध -निर्देशक का जीवन एक खुली किताब-सा बन जाता है। लेखिका ने ऐसे जीवन के अनेक अध्यायों को देखा-समझा है। कथोपकथन की बहुलता संस्मरणशिल्प की दुर्बलता माना जाती है, क्योंकि वे यथार्थ की रीढ़ को सुपुष्ट नहीं करते। भाषा-शैली आकर्षक एवं रोचक है।''

दयावती शर्मा ने मन गढ़ंत कथा सुनाने की बजाए अपने निजी जीवन की सत्य घटनाओं को आधार बनाकर संस्मरण लिखे हैं। यद्यपि जीवन की हर घटना संस्मरण का विषय नहीं बनती, किंतु आत्मपरक अनुभूतियों को कुरेदने तथा उद्वेलित करने वाली घटनाएँ संस्मरण का आधार बन जाती हैं। अत: दयावती जी ने 'कैसे भूलूँ?' और अन्य शीर्षकों से जो संस्मरण लिख वह उल्लेखनीय एवं प्रशंसनीय हैं। आप संक्षिप्त संस्मरण द्वारा गहनतम तथ्यों को उजागर करने की कला खूब जानती हैं। इस संबंध में उनकी लघुकथा सरीखे संस्मरण से एक उदाहरण प्रस्तुत है;

''बात सन् 1971 की है। उस समय मैं लोकमान्य तिलक प्रशिक्षण विद्यालय में बी॰एड॰ कर रही थी।

विदाई समारोह था उस दिन, सामान एक कमरे में रखा था। विद्यार्थीगण भाग-दौड़ में लगे हुए थे, मैं उस भण्डार में थी। किसी कार्यवश बाहर आई, सामने ही मेरे गुरु वर्मा साहब मिल गए।

दयावती जी कहाँ कौन है?''

''जी, सूआलालजी को छोड़ आई हूँ।'' गुरु जी ज़ोर से ठहाका लगाकर हँस पड़े। ''अरे! दयावती जी वह क्या देखभाल करेंगे। एक तो सूआ और उस पर भी सूए का लाला।'' पुन: हँस पड़े। आज भी वह हँसी हृदयपटल पर अंकित है।''

इसी प्रकार का एक और संस्मरण 'जब मोर्चे उखाड़े' शीर्षक से 'सन्निवेश-पाँच' (1972) में प्रकाशित हुआ था जिसमें दयावती जी ने 1971 ई॰ के भारत-पाक युद्ध का वर्णन करते हुए लिखा है कि जब फौजियों ने गाँव में मोर्चा बनाना आरंभ किए तो सभी ग्रामीणवासी स्वयं को पीड़ित अनुभव करने लगे, किंतु युद्ध समाप्ति के पशचात् ''जिन लोगों के घरों में फौजी भाई थे, वहाँ से जब मोर्चा उखाड़े तब घरवाले रो रहे थे। भाव-भीनी विदाई दे रहे थे। उखड़ते मोर्चे दिल पर एक अभाव-सा छोड़ते जा रहे थे।''

श्रीमती अमरवती सक्सेना की रुचि हास्य-व्यंग्य प्रधान संस्मरण लेखन में रही है। राजस्थान के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनके संस्मरण प्रकाशित होते रहते हैं, जिन पर पाठकों की अच्छी-बुरी टिप्पणियाँ भी आती रही हैं। 'वैवाहिक भूल' उनका सबसे प्रसिद्ध संस्मरण है। इस संस्मरण में हास्य परिहास के साथ-साथ झेंप, झिझक, शर्म, पश्चाताप सभी कुछ है। यथा;

एक बार हमें मेरे भाई के दोस्त के साले की शादी के बाद उसके समारोह में जाना था। रास्ते में एक सज्जन से हमने सिसोदिया गार्डन का पता पूछा। उसने इशारे से बताया कि वह सामने है।

हम सब वहाँ पहुँचे, जाते ही स्वागतकर्ताओं ने कहा, ''आइये-आइये भोजन कीजिए।'' हम खना खाने लगे। खाना खाने के पश्चात् मैंने अपनी बहिन से कहा चलो अब नववधू को उपहार दे आते हैं। हम मंच तक गए ही थे कि मेरी बहिन जो एक दिन पहले विवाह में भी गई थी, कहने लगी, ''दीदी यह तो वह दुल्हा-दुल्हन नहीं है। मेरे पति भी विवाह में गए हुए थे उन्होंने भी यही कहा।

हमने एक सज्जन से पूछा, ''यह सिसोदिया गार्डन ही है ना?'' उसने उत्तर दिया, ''जी नहीं यह तो विद्याधर का बाग है। सिसोदिया गार्डन तो आगेवाला है।''

यह सुनकर हमारे होश उड़ गए, हम वहीं से चुपचाप बाहर निकल आए व बाहर आकर चैन की साँस ली।

आज भी मैं जब किसी विवाह या आशीर्वाद समारोह में जाती हूँ तो मुझे वह घटना याद आ जाती है। मैं इसे भुलाये नहीं भूलती।''

श्रीमती शकुंतला गौड़ ने अपने अध्यापन जीवन की अनेक घटनाओं पर संस्मरण लिखे हैं। उनके संस्मरण ज्ञानवर्धक, शिक्षाप्रद और कथ्य-शिल्प की दृष्टि से सशक्त होते हैं। उनके संस्मरण 'हीरालाल' का उदाहरण तथा वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। इस संस्मरण में उनके द्वारा 'अपने मूढ़-मित छात्र में आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय के भाव भरने की घटना को प्रस्तुत किया गया है।''

संस्मरण के अंत में शकुंतला जी आह्वान करती हैं; ''यदि हम पढ़ाई से विरक्त हीरालाल जैसे बालकों के मन में आत्मविश्वास और दृढ़ निश्चय की भावना जागृत करें तो वे कुंठा मुक्त होकर अपना जीवन सुधार सकते हैं।''

कृष्ण कुमारी 'कमसिन' ने 'आत्मसंस्मरण' तथा 'परसंस्मरण' दोनों ही प्रकार के संस्मरण लिखे हैं। उनके संस्मरणों में चिंतन की सूक्ष्मता, कल्पना का लालित्य और भाषा-शिल्प का सौष्ठव स्तुत्य है। इसके अतिरिक्त विचारों की सहज और स्वाभाविक अभिव्यक्ति भी 'कमसिन' जी के संस्मरणों का मूलाधार है। इन संस्मरणों में दृष्य का अनुभव और प्रगल्भ भाव से की गई टिप्पणियों का आभास भी होता है। अधिकतर संस्मरण बिंबात्मक संबोधन से परिपूर्ण हैं। इस आशय के प्रमाण स्वरूप 'कमसिन' जी के संस्मरण 'भूल नहीं वह भूल' और 'जाको राखे साईंयाँ' के उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यह दोनों संस्मरण प्रमाणिक साक्ष्यों पर आधारित हैं।

'भूल नहीं वह भूल', 'कमसिन' जी के बाल्याकाल से संबंधित संस्मरण है, जब वे मेले में खो गई थीं। एक सज्जन ने उन्हें रोता देख अपना मानवीय कर्त्तव्य निभाते हुए घर पहुँचाने की व्यवस्था की वे लिखती हैं;

''मैं सकुशल घर पहुँच तो गई, पर यदि उस शाम वो सज्जन पुरुष मेरी मजबूरी न पूछते, मुझे मार्ग पर लेकर घर पहुँचाने की व्यवस्था न करते तो मैं उस रात कहाँ जाती, कैसे जाती, मेरा क्या होता, यही सोचकर भी मन अनजान भय से सहम उठता है। मेले की भीड़ की वो अविस्मरणीय घटना मेरे मानस पटल पर विद्युत की तरह कौंध जाती है।''

'जाको राखे साईंयाँ' कमसिन जी, उनके पति और उनकी 6 वर्षीय पुत्री के एक दुर्घटना में बाल-बाल बच जाने का संस्मरण है।

उक्त संस्मरण लेखिकाओं के अतिरिक्त श्रीमती सीता अग्रवाल, विमला भटनागर, कंचनलता, सुमनतारे, पुष्पलता, पंड्या, शेभा जोशी, कमलेश शर्मा और ब्यूला एस॰ कुमार आदि के संस्मरण आठवें और नवें दशक के पत्र-पत्रिकाओं और संकलनों में यदा-कदा देखने को मिल जाते हैं। किंतु इनमें से अधिकतर लेखिकाओं के संस्मरणों में प्रतिनिधित्व क्षमता का अभाव है।

संपर्क : द्वारा डॉ॰ मोईनुद्दीन 'शाहीन'
सुलेमानी मदरसा के निकट,
मोहल्ला व्यापारियाना, बीकानेर,
पिन-334001 (राजस्थान)

लेखक के चिंतन पक्ष को उजागर करती कृति

'समकालीन यथार्थबोध' के लेखक सिद्धेश्वर जी सच्ची वास्तविकताओं और संवेदनाओं के साहित्यकार हैं। वे काल्पनिक वास्तविकताओं और निर्जीव स्थितियों को बौद्धिक प्रयत्न से कथ्य में ढालने की कोशिश नहीं करते। प्रस्तुत पुस्तक में अत्यंत धैर्य के साथ लोक-मन और लोक-मत को समझाने का इन्होंने प्रयास किया है। यही नहीं, इन्हें आत्मबोध के साथ नई दिशा में बढ़ने के लिए प्रेरित करने की चिंता भी है। समाज की वास्तविकता के सर्जक सिद्धेश्वर जैसे विरले लेखक ही सच्चाई को रेखांकित करने का साहस कर सकता है। प्रस्तुत पुस्कत में लेखक ने अपने विचारों को साहित्य, शिक्षा, संस्कृति, धर्म-कर्म, पत्रकारिता और भारतीय राजनीति जैसे विषयों पर केंद्रीत किया है, जिसमें बौद्धिक जटिलता न होकर सादगी और बहुस्तरीय यथार्थ है। इस दृष्टि से यह कृति हमें भविष्य के प्रति आश्वस्त करती है।

वर्तमान युग से जुड़े छह विषयों को छह खण्डों में विभक्त करके लेखक ने उनकी विकृतियों को रेखांकित किया है और उन विषयों का अवगहन कर उनमें सम्मिलित अनमोल रत्नों को चुनने का प्रयास किया है। उनकी दृष्टि स्पष्ट, पूर्वाग्रह मुक्त और राष्ट्रीयता की सांस्कृतिक अवधारणा से विनिर्मित है। साहित्य पर विचार करते हुए जहाँ उन्होंने इसे जीवन को संवारने का एक संस्कार प्रदान करने वाला बताया है, वहीं साहित्यकारों की भूमिका की ओर भी इंगित किया है। साहित्य मनुष्य को इतर प्राणियों से भिन्न महत्त्व प्रदान करता है। साहित्य के बिना न तो मनुष्य अपने व्यक्तित्व का विकास कर सकता है और न समाज, राष्ट्र के हित की बात सोच सकता है। लेखक ने साहित्यकारों को उनके पुनीत कर्त्तव्यों की याद दिलाते हुए कहता है कि समाज और राष्ट्र की धड़कन को लोगों के समक्ष प्रस्तुत करना ही तो साहित्य का उद्देश्य है।

इसी प्रकार शिक्षा, संस्कृति, पत्रकारिता, धर्म-कर्म और भारतीय राजनीति से जुड़े सारे सवालों से टकराते हुए लेखक ने चिंतन पक्ष को छूने की कोशिश की है। विषय अलग-अलग हैं, लेकिन चिंतन का धरातल एक रस और समतल है। ये अगर प्रश्न उठाते हैं, तो उत्तर देने का साहस भी करते हैं। बौद्धिकता के प्रति सिद्धेश्वर जी निर्मम हैं और उस पर चोट करने से ये बाज़ नहीं आते। साहित्य खण्ड में लेखक दो-टूक कहता है, ''सदैव की तरह राज-सत्ता और अर्थ-सत्ता के बीच चोली-दामन का साथ आज भी क़ायम है। कहना मुश्किल है कि कौन किसे संचालित-नियमित कर रहा है। दरअसल यह एक ऐसा उद्योग है जिसका अपना एक संजाल है, माफ़िया है, बाज़ारवाद है, अपने नियम व तौर-तरीक़े हैं, जिसके बीच रचनाकार एक मोहरा भर है। यह एक ऐसा बाज़ार है, जो विद्रोही चेहरों और मुद्राओं की भी क़ीमत जानता है और लगाता है। क्योंकि वह वही लिखते जहाँ पैसा मिलता है और वही लिखते-बोलते हैं, जो पैसे वाला कहता है या चाहता है। पैसा वाले को वह अद्वेत भाव से देखता हैं।''

पुस्तक	: समकालीन यथार्थबोध
लेखक	: सिद्धेश्वर
समीक्षक	: डॉ॰ मंजुला गुप्ता
प्रकाशन	: सरदार पटेल साहित्य प्रकाशन, दिल्ली-110092
पृष्ठ	: 160 मूल्य : 150 रु॰ मात्र

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न विषयों पर लेखक के द्वारा व्यक्त विचारों की अनुपम कृति है, जो प्रासंगिक और सार्थक तो है ही सामिप्राय और संप्रेषणीय भी है। उनके सारे सरोकार राष्ट्रीता की संवेदनात्मक अनुभूतियाँ हैं। ये उन मूल्यों के प्रति अडिग और आस्थावान हैं, जिनकी समसामायिकता का लोप होता जा रहा है और बाज़ारवादी सभ्यता जिसे तिरस्कृत कर रही है। यह पुस्तक आत्मीयता के साथ शुचिता का संदेश भी देती है। सिद्धेश्वर जी के लिए आत्मा की आवाज़ सर्वोपरि है और वाणी के कारण हमारे जैसे देश के अनेक लोगों ने इनका सान्निध्य पाकर उनकी रचनात्मक दृष्टि, गुणवत्ता और आचार- व्यवहार को स्वीकार किया है तथा अपने आचरण एवं स्वभाव को अधिक उदार एवं व्यापक बनाने का संकल्प लिया है। इस पुस्तक की भूमिका के लेखक प्रो॰ कुमार वीरेन्द्र ने भी यही स्वीकार किया है कि सिद्धेश्वर जी के शांत-मृदुल स्वभाव के उनके व्यक्तित्व के पीछे कर्मठ, दृढ़ता के दर्शन उनमें हुए। सिद्धेश्वर जी एक पत्रकार के साथ-साथ एक सुलझे हुए साहित्यकार भी हैं और इस रूप में ये उन लोगों से स्वयं को बाक़ायदा अलग कर लेते हैं, जो दर्शन में ज़िंदगी ढूँढ़ते हैं। ये ज़िंदगी पढ़कर लिखते रहे हैं। आधुनिक बोध से संबद्ध सिद्धेश्वर जी इस दौर को निकट से देखने वाले लेखक हैं। यही कारण है कि इनकी यह रचना विभिन्न विषयों का यर्थाथ रूप देती है, जिसमें भय, आतंक और दासता की मनोवृत्तियाँ अधिक हैं। जिन साधारन की साहसहीनता, निर्णय लेने की अक्षमता दण्ड भोगने से पलायन आदि आज की सामंतवादी व्यवस्था की दैन है। इस व्यवस्था में और तो और साहित्यकार भी चाटूकार और सत्ता-समर्थक हो गए हैं। वर्तमान दौर की इस व्यवस्था में भी सिद्धेश्वर जी सत्ता के क़रीब होते हुए भी इन्होंने सत्ता से अपने को दूर रखा है। व्यवस्था की जूठन इन्हें स्वीकार नहीं।

भारतीय राजनीति खंड में लेखक ने भारतीय राजनीति के आज के परिदृश्य को जिस तीखे अंदाज़ में चित्रित किया है, वह इनके साहस का पता देता है। वर्तमान दोर की भारतीय राजनीति में चारों ओर भ्रष्टाचार, छल-प्रपंच, षड्यंत्र, अवसरवादिता,

शेषांश पृष्ठ 29 पर

हर आँसू मुस्कान बना दे या अल्लाह

○ उदय कुमार 'राज़'

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ग़ज़ल भी विगत वर्षों में अधुनातन की बहुप्रचलित एवं हिंदी तथा उर्दू काव्य की ऐसी लोकप्रिय विधा रही है, जो लेखन में प्रवृत्त हुई है। ग़ज़ल का नया ढाँचा आज के आदमी की बुनियादी ज़रूरतों और हालात को अपने में समेटकर चलता है। वह दूर की कौड़ी नहीं, कल्पना शिशु की मंद-मंद मुसकान नहीं, वह एक सही आदमी की शक्ल सूरत में रची-बसी है। ग़ज़ल में देश-दुनिया की तमाम बातें आ सकती हैं, आती रही हैं, किंतु अभिव्यक्ति का सर्वोत्तम माध्यम होने के बावजूद ग़ज़लकार के निज से उसकी ग़ज़ल का एक स्थाई रिश्ता होता है। ग़ज़लकार तुलीफ़क़ीर चंद जालंधरी का वर्ष 2007 में जीवी प्रकाशन, जालंधर से गुरुमुखी, हिंदी तथा उर्दू की तीनों भाषाओं में एक साथ ग़ज़लों की सद्य: प्रकाशित कृति 'ख़लल' जिसे उन्होंने सबसे बड़े सुपुत्र संजीव कुमार तुली के सदीवी बिछोड़े के सदीवी दर्द को समर्पित किया है, जीवन-जगत के विविध आयामी भावों के स्वच्छ दर्पण बनकर उनकी प्रतिभा भूमि पर तक़रीबन डेढ़ सौ से अधिक ग़ज़लों का समावेश कर प्रस्तुत हुई है। इसमें फ़क़ीरचंद की ग़ज़लों के पीछे उनका एक ऐसा चेहरा झलकता है, जो ऊपर से तो बहुत ही शांत और संयमित दिखती हैं, लेकिन भीतर से उमड़ते समुद्र की तरह है।

आज के मनुष्य का जीवन संघर्ष पौराणिक कुरुक्षेत्र से कम नहीं। हमारा समाज एक संवेदनशील मनुष्य के लिए रणभूमि से कम नहीं। इनके मूल में परिवर्तन के प्रति ग़ज़लकार की विकलता व्यक्त होती है। एक ईमानदार आदमी की बौखलाहट होती है।

प्रस्तुत ग़ज़ल-संग्रह के शायर ने ग़ज़लों के माध्यम से अपनी खुशी और ग़म दोनों का इज़हार किया है। यूँ तो कविता की तरह ग़ज़ल के शीर्षक नहीं होते फिर भी शायर ने हर ग़ज़ल में शीर्षक देकर उसके अंदर के भाव को पाठकों तक पहुँचाने की कोशिश की है। ग़ज़लों के अवलोकन से इस बात का एहसास हो जाता है कि शायर की मातृभाषा पंजाबी है। यह आभास उनके लहजे के सबब से होता है। फ़क़ीरचंद ने इंसान के अंदर के वहशीपन को जिस शिद्दत और ख़ूबी से उकेरा है वह क़ाबिले तारीफ़ है।

ऐसा लगता है यह बिल्कुल आदमी है,
भेड़ियों की याख़ुदा कैसी नस्ल है।

आम आदमी की परेशानियों को आत्मसात करने का सवाल हो या व्यवस्था के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का, शायर ने उन्हें अच्छी तरह रेखांकित किया है।

जल बिना, रोटी बिना, कपड़े बिना ही,
जी रहे हैं लोग अल्लाह का फ़ज़ल है।

हादसे में जल गई थीं जो तुम्हारी उँगलियाँ,
उँगलियों को पकड़के तड़पी हमारी उँगलियाँ।

आग से खेलना आसान नहीं है, मगर कुछ लोग ऐसे भी होते हैं, जो ख़ुद को मिटाकर औरों की ज़िंदगी रौशन करना चाहते हैं। इस तरह का जज़्बा बहुत कम लोगों में देखने को मिलता है।

ग़ज़ल-संग्रह : ख़लल
शायर : तुली फ़क़ीरचंद जालंधरी
समीक्षक : श्री उदय कुमार 'राज़'
प्रकाशक : तुली मधुसुदन, जी॰वी॰ प्रकाशन
पृष्ठ : 64 मूल्य : 60-/

मोम बनकर आग के इस शहर में
मोमबत्ती को जलाना चाहता हूँ।

फूल हैं, पत्तियाँ हैं, भँवरे, तितलियाँ
मौत से इनका बचाना चाहता हूँ।

फ़लसफ़े की बात करने से भी शायर नहीं चुकता है। दूसरी तरफ़ आज जिस तरह हमारे नुमाईंदे जमहूरियत को ज़लील कर रहे हैं और संसद रूपी मंदिर को अपने नापाक कारनामों से शर्मशार कर रहे हैं, इससे उत्पन्न पीड़ा को शायर ने भी महसूस किया है। इसीलिए वह भगवान से दुआ करता है कि

तिनके-तिनके से है संसद को बनाया हमने
डूबने से इसे तिनके का सहारा दे दे।

राजनीतिक भ्रष्टाचार, आपाधापी तथा स्वार्थलिप्सा ने व्यक्ति को अँधा बना दिया है। मानवीय मूल्यों के ह्रास से व्यक्ति संशयग्रस्त है और आतंकित हो चुका है, मगर हमारे राजनेता चाहते हैं वे युग प्रवर्तक बनें। भले ही मानवता का सर्वनाश होता रहे और वे पाखंड, अहं, ईर्ष्या, विरोध द्वारा अपना प्रभुत्व जमाकर स्थापित होना चाहते हैं। शायर की कई ग़ज़लें यथार्थ की परतों को उधोड़कर हमें विकृत्तियों और विसंगतियों की तह तक ले जाती हैं। ये युगीन हलचलों से बेख़बर नहीं हैं। शायर ने नेराश्य, घुटन, और भटकाव की स्थितियों के बीच आस्था को नहीं खोया है।

इस प्रकार कुल मिलाकर देखा जाए तो शायर के भीतर आक्रोश और विद्रोह की भावना है, जो वर्तमान व्यवस्था की विकृतियाँ देखकर पैदा हुई है, जिनसे निराश और विवशता का अनुभव होता है। परंतु इस अमानवीय वातावरण में उसे आशा की किरण भी देखाई देती है। उससे मुक्ति का रास्ता भी नज़र आता है।

यह संग्रह सच्चाई को देखने का सफल प्रयास है। जिस अनुपात में शायर सच्चाई को देख पाता है, उसी अनुपात में ग़ज़ल विकास करती है। शायर की भावाभिव्यक्ति से बार-बार इंगित होता है कि वह वही ग़ज़ल यथार्थ ग़ज़ल है जो पूरी तरह व्यापक आम आदमी के हित में हो। सरल और सहज भाषा में लिखी गई ग़ज़लों के इस संकलन का पाठकों के बीच स्वगत होगा, इस विश्वास के साथ फ़क़ीरचंद को बधाई देता हूँ।

संपर्क : एस॰ 107, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली-92

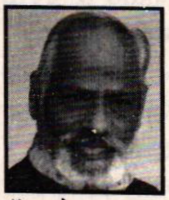

डॉ॰ महेन्द्र भटनागर

कविता में काम चेतना

मध्य प्रदेश महाविद्यालय शिक्षा के अध्यापन से जुड़े तथा हिंदी विभाग एवं भाषा एवं साहित्य के शोध -निदेशक के पद पर रहे डॉ॰ महेन्द्र भटनागर ने काव्य की प्राय: सभी विधाओं में अपने प्रचूर साहित्य-लेखन से न केवल हिंदी साहित्य को, बल्कि फ्रेंच तथा अँग्रेज़ी साहित्य को भी समृद्ध किया है। लगभग ढाई दर्जन कविता की कृतियों सहित आलोचना, एकांकी, रेखा चित्र, लघु कथा, बाल व कैयोर साहित्य में इन्होंने अपनी लेखनी से अनवरत चिरंतन साहित्य का प्रणयन किया है। गद्य-पद्य दोनों ही क्षेत्रों में अपनी संपूर्ण प्रासंगिकताओं के साथ जीने वाले साहित्य के इस विद्वान हस्ताक्षर का 'डॉ॰ महेन्द्र भटनागर-समग्र' छह खण्डों में प्रकाशित तो हुआ ही है, इनकी कविताएँ भी अनेक विदेशी भाषाओं एवं अधिकांश भारतीय भाषाओं में अनूदित व प्रकाशित हुए हैं। 'संध्या', 'प्रतिकल्पा', कविश्री 'अंचल' स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य, 'गोदान-विमर्श' तथा 'Adviser Poetcrit' जैसे पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का संपादन कर एक कुशल एवं यशस्वी संपादक के रूप में भी अपनी एक अलग पहचान बनाई है। उत्तर प्रदेश के झाँसी में 26 जून, 1926 ई॰ को जन्मे डॉ॰ भटनागर को अब तक डॉ॰ शिवमंगल सिंह 'सुमन' अलंकरण सहित कोई एक दर्जन से अधिक पुरस्कार-सम्मान मिल चुके हैं।

मौलिक सद्भावनाओं तथा कविता में नए प्रयोगों और प्रतीकों के बिंब विधान को स्थापित करने वाले डॉ॰ भटनागर हिंदी के प्रमुख कवियों में एक हैं, जिनकी रचनाधर्मिता ख़ास तौर पर विशिष्ट विषयों पर इनकी विशिष्ट कविताएँ सुख प्रदान करती हैं और साथ ही इनके सृजनशील स्वर व्यक्ति व समाज को नई दिशा प्रदान करते हैं। इनके अनुभवजन्य लेखन के आधार पर इतिहास के रूख़ को बदला जा सकता है तथा स्वर्णिम भविष्य की आधारशिला रखी जा सकती है ख़ासकर तब जब वर्तमान दौर में हर तरफ़ सत्साहित्य के प्रति घोर निराशा दिखाई पड़ती है और अश्लील साहित्य एवं कुत्सित विचारों के पोषक साहित्यों की भरमार हैं। 'विचार दृष्टि' के अब तब के ग्वालियर प्रतिनिधि तथा लेखक के रूप में जुड़े डॉ॰ भटनागर को इसके संचालक मण्डल ने पत्रिका के परामर्शी के पद पर मनोनीत कर वह स्वयं गौरवानिवत महसूस कर रहा है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय, अँग्रेज़ी विभाग के प्रोफ़ेसर डॉ॰ रमेशचंद्र द्विवेदी ने पिछले दिनों 'विचार दृष्टि' के 'साक्षात्कार' स्तंभ के लिए डॉ॰ भटनागर से कविता में काम चेतना से जुड़े अनेक सवालों को लेकर बातचीत की। प्रस्तुत है यहाँ उसी बातचीत के कुछ अंश।

○ संपादक

काम वासना के संदर्भ में आपकी धारणा क्या है?

पाश्चात्य पौराणिक (mythological) संदर्भ में ईरोस यूनानी प्रेम का देवता माना जाता है; जिस प्रकार भारतीय पौराणिक संदर्भ में कामदेव (काम का देवता) ईरोस का संबंध शारीरिक प्रेम और काम-वासना (erotic) से है। काम-एषणा जीवन की प्रमुख एषणाओं से है। फ्रॉयड ने तो काम को जीवन की मूल प्रेरणा माना है। जबकि भारतीय मनीषियों ने काम, अर्थ और यश को (पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा 'बृहदारण्यक उपनिषद्') प्रेरक शक्तियाँ माना है; किंतु इन्हें उच्च स्थान नहीं दिया है। उपनिषद् ने 'आत्म-प्रेम' को सब चेष्टाओं-क्रियाओं का मूल कारण घोषित किया है। भारतीय चिंतक धर्म को सर्वश्रेष्ठ मानता है-अर्थ को मध्य और काम को लघु।

क्या आप अपने को एक शृंगारिक (कामोद्दीपक) कवि मानते हैं?

कदापि नहीं। शृंगार-काव्य (संयोग पक्ष -वियोग पक्ष) और वासनापूर्ण कामोद्दीपक काव्य में अंतर समझना चाहिए। साहित्य -रचना / काव्य-रचना का शृंगारपरक प्रेमपरक, होने का अर्थ कामशास्त्रीय होना नहीं। कविता का संबंध भावना से है; अनुभूति से है। शारीरिक काम-चेष्टाओं और रति-क्रीड़ाओं से नहीं। यह बात भिन्न है; कुछ रचनाकारों ने अपनी कृतियों में उन्मुक्त उद्दाम यौन-चित्रण किया है। जहाँ मेरी कविता का संबंध है; उसका प्रमुख सरोकार नारी-रूप-सौंदर्य, प्रेम-व्यापार (actoin) और प्रेम-भोग नहीं है। माना, वहाँ प्रेम का तिरस्कार नहीं है। मैंने प्रेमपरक-शृंगारपरक (स्वकीया) कविताएँ भी रची हैं। लेकिन मेरे कवि को प्रमुख रूप में रोमाण्टिक या रोमांस का कवि नहीं ठहराया जा सकता। महाभारतकार के अनुसार पत्नी केवल काम-क्रीड़ा की ही वस्तु नहीं है; एक जीवन-संगिनी के रूप में वह मूल्यवान औषधि का काम करती है। स्वकीया अभिव्यक्ति-भावना तक में, मैंने उपरि-संदर्भिता काम को महत्त्व नहीं दिया; क्योंकि मेरे जीवन और काव्य के सरोकार सामाजिक चेतना और मानवतावाद केंद्रीत रहे हैं। इस संदर्भ में, निम्नलिखित कविताएँ द्रष्टव्य हैं :

छलना

आज सपनों की नहीं मैं बात करता हूँ।
चाँद-सी तुमको समझकर
अब न रह-रह कर विरह में आह भरता हूँ।
नहीं है रुग्ण मन के
प्यार का उन्माद बाकी,
अब न आँखों में
तुम्हारी झिलमिलाती रूप की झाँकी।
कि मैंने आज
जीवित सत्य की तस्वीर देखी है,
जगत की ज़िंदगी की
एक व्याकुल दर्द की तस्वीर देखी है।
किसी मासूम की उर-वेदना
बन धार आँसू की धरा पर गिर रही है,
और चारों ओर है जिसके अँधेरे की घटा,
जा रूठ बैठी है सबेरे की छटा।
उसको मनाने के लिए अब मैं हज़ारों गीत गाऊँगा,

अँधेरे को हटाने के लिए
नव ज्योति प्राणों में सजाऊँगा।
(सन् 1952 ई॰)

शारीरिक प्रेम और यौन-लिप्तता में क्या अंतर है?

यह सत्य है; पुरुष-स्त्री का पारस्परिक प्रणय-संबंध काम-वासना रहित (Platonic) नहीं हो सकता। काम-वासना न निंदनीय है; न उसका वहिष्कार ही संभव है। भारतीय मनीषा ने काम को धर्म के आश्रित माना है। काम की इच्छा को वहाँ 'पुत्रैषणा' कहा गया है। संतान-कामना से प्रेरित होकर जब पति-पत्नी पारस्परिक शारीरिक / यौन संबंध स्थापित करते हैं तो यह कर्म पवित्र और मांगलिक है। इन संबंधों के विरूद्ध बोलना पाप है; क्योंकि मानव-जाति का अस्तित्व व विकास इसी पर निर्भर है।

काम-भावना से आपकी कविता कितना प्रभावित है?

जिस युग में मैंने काव्य-रचना प्रारंभ की वह छायावाद युग था। उत्तर-छायावादी काव्य-रचना का प्रभाव समाप्ति पर था। प्रगतिवादी काव्यांदोलन ने अपनी जड़ें पकड़ ली थीं। यद्यपि उत्तर-छायावादी कवि बच्चन, नरेंद्र शर्मा 'अंचल' आदि की रोमानी काव्य-सृष्टि भी समानांतर चल रही थी। रमणी-नारी के प्रति इन कवियों का दृष्टिकोण छायावादी कवियों की तरह कुतूहलपूर्ण व वायवीय नहीं था; वह मांसलता लिए हुए था। नारी के कामिनी रूप के प्रति मांसल दृष्टिकोण रखने वाले कवियों में -अंचल' प्रमुख थे। प्रगतिवादी कवियों ने नारी के रूप-सौंदर्य व प्रेम-व्यापार को प्राथमिकता नहीं दी। वह समाजार्थिक और राजनीतिक चेतना से अधिक प्रेरित रही। सन् 1941 ई॰ के आसपास प्रगतिवादी कविता अपने पूर्ण उभार पर थी। पंथ व निराला के साथ-साथ शिवमंगल सिंह 'सुमन', केदार नाथ अग्रवाल प्रभृति कवि चर्चा में थे। तद्परांत सन् 1943 ई॰ में 'अज्ञेय' द्वारा संपादित 'तार-सप्तक' का प्रकाशन हुआ; जिसने प्रयोगवादी कविता के प्रति काव्य-समीक्षकों को आकर्षित किया। वस्तुत: लगभग यहीं से नव-प्रगतिवादी कविता का स्वरूप निश्चित हुआ। राजनीतिक मतवाद और कम्युनिस्ट पार्टीगत आग्रह गौण हुआ। प्रगतिवादी कविता ने नारावादी रूप त्याग कर, अधिक कलात्मक स्वरूप ग्रहण किया। यही नव-प्रगतिवादी काव्य-धारा आगे चलकर सन् 1950 ई॰ के आसपास 'नई कविता' के नाम से पुकारी जाने लगी। 'नई कविता' का ही एक अन्य पक्ष प्रयोगवादी अथवा 'नव-लेखन' की हिमायत करता है। उपर्युक्त पृष्ठभूमि में मेरे युवा कवि ने नारी के रूप, सौंदर्य, शृंगार, प्रेम को अभिव्यक्ति दी। चूँकि मेरी आस्था प्रगतिवाद के प्रति रही; अत: मेरे काव्य के केंद्र में काम-भोग भावना का स्थान अति गौण रहा। बल्कि यों कहा जाय कि इस दिशा में सतर्कतापूर्वक बचने का प्रयत्न तक रहा। माना, यह दृष्टि एकांगी थी; किंतु वस्तु-स्थिति कुछ इसी प्रकार की थी। प्रगतिवादी समीक्षकों और पत्र-संपादकों की दृष्टि मेरी काव्य-सृष्टि पर भी रही। उन दिनों पत्र-पत्रिकाओं में मेरी जो रचनाएँ प्रकाशित होती थीं; उन पर समीक्षकों का ध्यान बराबर रहता था। उदाहरण के तौर पर एक घटना का उल्लेख यहाँ करता हूँ।

कोलकता से उन दिनों 'रानी' नाम की एक सुरुचिपूर्ण स्तरीय साहित्यिक मासिक पत्रिका प्रकाशित होती थी। इस पत्रिका में मैंने भी लिखा। मेरी कुछ रोमांटिक कविताएँ भी इसमें छपीं। प्रतिक्रियाओं से प्रभावित होकर मैंने इस कविता से अंतिम इन दो पंक्तियों को हटा दिया।

इसलिए बाँहें उठा कर आज तुम
वक्ष से जाओ लिपट मेरी कुसुम

यह कविता 'मधुरिमा' में समाविष्ट है। रवींद्रनाथ ठाकुर की कविताएँ एवं रवीन्द्र-काव्य के समीक्षकों के आलेख पढ़ते समय मैंने जाना कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने काव्य में विराट कल्पनाएँ की हैं। मैंने सोचा, क्यों न मैं भी प्रकृति पर विराट कल्पनाएँ प्रस्तुत करूँ। परिणामत: कविता 'बरखा की रात' ने आकार ग्रहण किया। 'रानी' में प्रकाशित उक्त कविताओं को पढ़कर प्रगतिवादी साहित्यांदोलन के पुरस्कर्ता एवं प्रमुख पत्रिका 'हंस' के संपादक श्री अमृतराय ने मुझे लिखा "-रानी" में कल तुम्हारी एक रोमानी कविता देखी- यह सब क्या है? 'अंचल' वाली प्रवृत्ति छोड़ो।" (दिनांक 14 फ़रवरी, 1949 का पत्र) उन दिनों अमृतराय मेरी कविताएँ 'हंस' में नियमित प्रकाशित कर रहे थे। प्रगतिवादी विचारकों, आलोचकों, कवियों की सतर्क दृष्टि से मेरा लेखन गुज़र रहा था। अमृतराय के पत्र से मेरा चौकन्ना हो जाना स्वाभाविक था।

सन् 1953 ई॰ की एक बात और। कहंदी के लोकप्रिय कवि भवानी प्रसाद मिश्र उन दिनों हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली मासिक पत्रिका 'कल्पना' के संपादक-मंडल में थे। इस पत्रिका में मेरी भी कुछ कविताएँ प्रकाशित हुईं। इसमें 'चाँद से' कविता प्रकाशित हुई; तो इसकी भी तीव्र प्रतिक्रिया हुई।

सन् 1950 ई॰ में जब मेरे प्रेम-शृंगार गीतों का संकलन 'मधुरिमा' प्रकाशित हुआ, तो मैंने उसकी भूमिका में लिखा 'मधुरिमा' के गीत वैयक्तिक जीवन से संबंध रखते हैं। वैयक्तिकता जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू है। ... जीवन में प्रेम और प्रणय का महत्त्वपूर्ण स्थान है, माना कि प्रेम और प्रणय ही सब कुछ नहीं है। एक अवस्था-विशेष पर प्रेम और प्रणय की भावनाएँ प्रत्येक के मानस पर छा जाती है- यह तथ्य मनु और श्रद्धा से लेकर आज तक और भविष्य में प्रलय काल तक कहीं भी झुठलाया नहीं जा सकता। प्रेम और प्रणय की भावनाएँ अपने स्वस्थ रूप में व्यक्ति और समाज के लिए शिव है। 'मधुरिमा' के गीतों से यदि भावुक और स्वस्थ व्यक्तियों के हृदय सहज तादात्म्य स्थापित करते हैं, तो उनकी उपादेयता स्वयं सिद्ध है। जहाँ तक मेरे संबंध हैं, मुझे इन गीतों से मोह भी है और विरक्ति भी।" अनेक आलोचकों को मेरा उक्त स्पष्टीकरण अनावश्यक लगा।

वे अन्य कवि कौन हैं, जिन्होंने अपनी कविताओं में काम-भावना को स्थान दिया?

वास्तव में इस प्रकार की कविताएँ मुझे कम ही देखने-पढ़ने को मिली हैं। इस संदर्भ में कालिदास, जयदेव, धर्मवीर भारती आदि और 'अकविता' के कवियों की काव्य-सृष्टि में देखे जा सकते हैं।

काम-चेष्टा, प्रेम और यौन-लिप्तता में परस्पर क्या संबंध हैं?

स्त्री-पुरुष के परस्पर प्रेम का एक पक्ष काम-वासना-जन्य होता है; शारीरिक होता है। प्रेमपरक शृंगारिक कविताओं में काम-वासना की निहित स्वाभाविक है। संयोग / संभोग-शृंगार में ही नहीं; वियोग / विप्रलंभ-शृंगार में भी। संयोग-वियोग एक

ही सिक्के के दो पहलू हैं। सब जानते हैं, संसार का अधिकांश साहित्य / काव्य शृंगारपरक है। स्त्री-पुरुष का परस्पर स्वाभाविक आकर्षण तिरस्कार का विषय नहीं है। वह प्राकृतिक है। सभ्य मानव समाज ने उसे मौलिक स्तर प्रदान किया है। अत: तथाकथित (Eroticism) से प्रभावित होना कोई अजूबा बात नहीं। हाँ, अंतर शृंगार और उद्दाम शृंगार में अवश्य है। काम/ यौन चित्रण को प्रश्रय देने वाला साहित्य वरेण्य नहीं माना गया है। मनुष्य के दुर्बल पक्ष को यथार्थ के नाम पर अभिव्यक्त करना कोई उत्कृष्ट रचना-कर्म नहीं है। आध्यात्मिकता के नाम पर भी काम-चित्रण को मूर्त करना अशोभन है। खजुराहो की काम-चित्र व मूर्तिकला की कलाविद् चाहें कितने भी प्रशंसा करें; सामान्यत: जन पर वह कोई स्वस्थ भाव अंकित नहीं करती। अत: काम-वासना या शृंगार-भाव की साहित्य अथवा कला में अभिव्यक्ति की एक सामाजिक मर्यादा स्वीकार करना ज़रूरी है। निरंकुश चित्रण रचनाकार के रुग्ण हृदय का प्रतिबिंब बन कर न रह जाए।

काम और इंद्रिय-सुख, काम और आध्यात्मिकता, काम और सौंदर्य, काम और प्रेम में परस्पर क्या संबंध है?

इस प्रश्न का उत्तर पूर्व-प्रश्न के उत्तर में समाहित है। साहित्य इंद्र-सुख की स्थूल वस्तु कदापि नहीं है। साहित्य अनुभूतिजन्य होता है। वह हमारी भावनाओं को उद्दीप्त करता है। भाग जहाँ समाप्त होता है; वहाँ से साहित्य-सृष्टि प्रारंभ होता है। साहित्य एवं कलात्मक रचनाएँ पुनआहूत होती हैं। अधिकतर वे काल्पनिक अथवा कल्पना मिश्रित होती हैं। उसे आप कल्पना-विलास भी कह सकते हैं। बुद्धिवादी और नैतिक दृष्टि से वासनापूर्ण व कामोद्दीपक साहित्य-रचना को हेय समझा गया है। साहित्य कोई रति-शास्त्र नहीं है। तीव्र काम-वासना से पीड़ित अस्वस्थ कामुक व्यक्ति संभोगेच्छा ग्रस्त होता है; किंतु ऐसे व्यक्ति को रचना के क्षेत्र में- साहित्य के क्षेत्र में-इतनी स्वतंत्रता नहीं दी जा सकती। सामाजिक स्वस्थ साहित्य-रचना की प्रथम शर्त है। सौंदर्य हमें उत्तेजित नहीं करता; आकर्षित करता है। सौंदर्य में अश्लीलता नहीं होती है हमारी भावना में; दृष्टि में। आध्यात्मिकता के नाम पर या शिव-पार्वती / कृष्ण-राधा के नाम पर यदि कहीं शृंगार का अतिक्रमण हुआ है, तो वह कितना भी 'मधुर' हो; ग्राह्य नहीं। संस्कृत आचार्य ऐसा चित्रण कर चिल्ला उठता है-'शांतम् पापम्- शांतम् पापम्'।

क्या आप समझते हैं कि काम-भावना की प्रवृत्ति सार्वभौम है?

काम-भावना विश्व-व्यापी है। सार्वकालिक है। उसका संबंध प्राणिमात्र से है। मनुष्य प्रयत्न करता है। उसके काम-व्यापारों, काम-संबंधों, काम-अभिव्यक्तियों में सौंदर्य हो; ऐकांतिकता हो, गोपनीयता हो। लेकिन यह भी सच है कि काम-संदर्भों में मनुष्य पशुओं से भी गया-गुज़रा है। पशुओं की काम-वासना मौसम विशेष में ही प्रस्फुटित होती देखी गई है; जबकि मनुष्य इस दिशा में हैवान बन जाता है। यौन-कुकर्मों और बलात्कारों की घटनाएँ अखबार में हम जब तब पढ़ते ही रहते हैं।

संबंधों के प्रति व्यावसायिक आधिपत्य भावना, अनुचित साधनों के उपयोग और उद्दात्त भावानात्मक दृष्टिकोण की आलोचना आप किस प्रकार करेंगे?

वर्तमान समाज में धन का महत्त्व सर्वविदित है। आदमी के लिए आज धन ही सर्वस्व है। पारस्परिक रिश्तों में न पर-हित का भाव रहा; न मर्यादा रही। नैतिकता-अनैतिकता के मानदण्ड हमने बदल डाले हैं, आदमी धन और काम के पीछे बेतहाशा भागा जा रहा है।

क्या आप मानते हैं कि काम मनुष्य की संपूर्ण चेतना को नियंत्रित करता है?

मनुष्य को एक विशिष्ट उम्र में ही काम-वासना प्रभावित-नियंत्रित करती है। उसके संपूर्ण जीवन को नहीं। व्यक्ति चाहे अंर्तमुखी प्रवृत्ति का हो चाहे बहिर्मुखी; काम-भावना उसके रक्त में प्रवाहित करती है। इसकी उपस्थिति स्वयं में अति-सहज और प्राकृतिक है। बाल-काल और वृद्धावस्था-काल ऐसे काल हैं; जब मनुष्य या तो काम-अनुभूति से अनभिज्ञ-अपरिचित रहता है या काम के क्षणिक भोग के अनुभव से परिपूर्ण। शारीरिक प्रेम यौवन-काल तक सीमित है।

क्या आप इस मत से सहमत हैं कि स्त्री और पुरुष की काम-श्रेणियाँ व्यावहारिक रूप से निसर्गगत हैं; वे मात्र मानव-विज्ञान से संबंधित नहीं हैं?

स्त्री और पुरुष की स्थूल यौन-भेद श्रेणियों का संबंध सृष्टि से है। निसर्गगत है। लेकिन दोनों का भावगत संबध; जो परस्पर समान है, मानव-विज्ञान से संबंध रखता है। यौन-सूत्र को 'अद्वैत' न मान कर 'द्वैत' मानना अधिक सही है। स्त्री-पुरुष के पारस्परिक आकर्षण का रहस्य प्राकृतिक भिन्नता में निहित है। 'आत्मरति' से वह संतुष्टि उपलब्ध नहीं होती; जो 'द्वैत' से होती है। काम पक्ष का यह व्यावहारिक रूप है।

संपर्क : प्रो॰ सुरेशचंद्र द्विवेदी
अँग्रेज़ी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय,
125/3 ओम गायत्री नगर,
तेलियागंज, इलाहाबाद

पृष्ठ 25 का शेषांश

अनैतिकता और झूठे आश्वासन नज़र आते हैं, बल्कि सच तो यह है कि भारतीय राजनीति का आज वही चित्र बन गया है। लेखक ने बड़े मार्मिक और सहज ढंग से इस चरित्र पर प्रकाश डालते हुए राजनेताओं के कुचक्रों को उजागर किया है। सचमुच वर्तमान राजनीतिक विसंगतियाँ और विद्रूपताओं ने जीवन को खोखला कर डाला है, निर्जीव और आस्थाहीन बना दिया है। राजनीतिबाज़ों के दोहरे चरित्र से सामान्य जनता का मोह भंग होना स्वाभाविक है। मूल्यों की जगह मूल्य-विघटन, आस्था के स्थान पर अनास्था और विश्वास की जगह अविश्वास उत्पन्न हो गया है। लेखक का कथन कितना सटीक है, जो हमें सावधान करता है;

"आज जिस दौर से राजनीतिक गतिविधियाँ गुज़र रही हैं, यदि उसकी दिशा नहीं बदली, तो वह दिन दूर नहीं जब हमें हज़ारों वर्ष से अधिक विदेशियों की सत्ता में रहने के बावजूद खंडित भारत के रूप में मिली आज़ादी को भी गंवाना पड़ सकता है ... आज़ादी के बाद फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही आया है कि आज विदेशी की जगह हमारे भारतीय नेता और प्रशासक देश की संपत्ति को लूटकर विदेशी बैंकों में धन जमा कर रहे हैं।"

इसमें कतई संदेह नहीं है कि लेखक की यह कृति साहित्य जगत में सदैव वर्तमान तथा भावी पीढ़ी को कुछ सोचने के लिए विवश करेगी। अपने मिज़ाज और सिद्धांतों पर टिकी सिद्धेश्वर जी की धारदार लेखनी सदैव चलती रहे इसके लिए मैं इनके दीर्घायु जीवन की मंगलकामना करती हूँ और इतनी अच्छी कृति के लिए हार्दिक बधाई देती हूँ।

संपर्क : 9, बी॰एस॰ रोड, बाईस गोदाम सर्किल, जयपुर, राजस्थान

साहित्यकारों को चाहिए न्याय

○ प्रो॰ दीनानाथ 'शरण'

साहित्यकारों को 'साहित्यिक न्याय' मिलना चाहिए। हम इसके पक्ष में हैं, परंतु सबसे पहले यह तो तय हो कि 'साहित्यकार' है कौन? साहित्य की सच्ची पहचान है क्या? जिस तरह दाढ़ी-मूंछ बढ़ा लेने से, गेरुआ या श्वेत वस्त्र-विन्यास से ही कोई व्यक्ति साधू या संत नहीं हो जाता, उसी तरह कोई व्यक्ति कुछ भी लिखने-छपने से साहित्यकार नहीं हो जाता। व्यापक अर्थ में तो इतिहास-भूगोल, दर्शनशास्त्र आदि सभी साहित्य के अंतर्गत हैं परंतु यहाँ तात्पर्य ज्ञानपरक साहित्य से नहीं है, बल्कि रसात्मक साहित्य से है। यहाँ तात्पर्य उस साहित्य से है, जिसमें भावना है, संवेदना है और जिसकी प्ररिणति है 'रस' रसात्मक् वाक्यम् काव्यम्। इसी कोटि के लेखक हमारे विचार से 'साहित्यकार' हैं- सच्चे साहित्यकार हैं, अन्यथा आज तो छद्मसाहित्यकारों का भेड़ियाधसान है, जमावड़ा है। जो क़ानून की दृष्टि में अवैध भीड़ की तरह, अवैध साहित्यकारों का जमावड़ा है। 'नक़्ली सिक्के, जिस तरह बाज़ार में असली सिक्कों पर हावी होने की ताक में रहते हैं, ऐसे छद्म साहित्यकार सच्चे साहित्यकारों को धकियाते रहते हैं। ये कई बार, कई कारणों से, सच्चे साहित्यकारों के आगे भी बढ़ जाते हैं। आगे बढ़कर सम्मान, पुरस्कार हथिया लेते हैं, सरकारी समितियाँ, विश्वविद्यालय की मानद डिग्रियाँ हासिल कर लेते हैं, धन्नासेठों के द्वारा प्रायोजित मोटी रक़म के पुरस्कार प्राप्त कर लेते हैं। ज़ाहिर है, ऐसे में सच्चे साहित्यकारों को वह 'साहित्यिक न्याय' नहीं मिलता जिसके वे वास्तव में हक़दार हैं।

इसी 'साहित्यिक न्याय' का हम प्रबल समर्थन करते हैं। इसके लिए आवाज़ उठाते रहे हैं और हम उठाते रहेंगे। बहुत पहले सन् 1959 ई॰ को ही लगभग हमने अनुभव किया कि हमारे बहुत से साहित्यकार न्याय से वंचित हैं। तब हमने उनपर लंबी-लंबी समीक्षाएँ लिखीं और उन्हें पत्र-पत्रिकाओं में छपने के लिए भेजीं। कुछ पत्रिकाओं ने हमारी समीक्षाएँ छापीं भी ; परंतु तथाकथित 'बड़े अख़बारों' एवं 'मठधीश पत्रिकाओं' ने नहीं छापीं और 'साहित्यिक न्याय' दिलाने का हमारा अभियान कंटकाकीर्ण रहा। कई ने नहीं छाप कर उपेक्षा की ; और कई ने हमारे ख़िलाफ़ टिप्पणियाँ कीं। एक दैनिक ने हमारे बारे में तीखी निंदा छाप डाली। "कहाकवि मैनुफैक्चरिंग कंपनी लिमिटेड" फिर भी, हमने उन सब की कोई परवाह न करते हुए अब तक लगभग ऐ सवा सौ साहित्यकारों को अपनी 'सम्मति', 'भूमिका', 'पुस्तक-समीक्षा' आदि लिख-लिखकर 'साहित्यिक न्याय' दिलाने की चेष्टा की; और कई पर तो स्वतंत्र विशद समीक्षा-ग्रंथ ही लिखे। इस संदर्भ में हमने अपने कई लेख यत्र-तत्र प्रकाशित कराए और बिहार एवं बिहार की कई पत्र-पत्रिकाओं ने हमारा भरपूर साथ दिया। इस क्रम में 'नई धारा', 'विश्वमित्र', 'नवराष्ट्र', 'प्रदीप', 'बेलिम', 'लोकपत्र', 'मुक्तकंठ', 'रश्मि' और 'क्षणदा' आदि चिर-स्मरणीय हैं। बिहार के बाहर जितना अधिक सहयोग 'कंणतिस्वर' साप्ताहिक, फ़तेहपुर (यू॰पी॰) से मिला, अन्य किसी से नहीं।

तो इस प्रकार के 'साहित्यिक न्याय' के अभियान की महत्ता क्यों है? इसलिए है कि हमारे "समकालीन सच्चे साहित्यकार" विस्मृति के गहवर में डूबने न पाएँ। पुरस्कार, सम्मान, मानद उपाधियाँ तो कई साहित्येतर कारणों से भी मिलती रही हैं, मिलती अभी हैं, मिलती रहेंगी। क्या जिस कवि-लेखकों को राजे-महाराजे से पुरस्कार मिला, शायरों को नवाबों से ख़िताब मिला, हाथी, घोड़े, जागीरें मिलीं, वे सच्चे साहित्यकार थे? बाक़ी अन्य उनके समकालीन साहित्यकार सबके सब बोदे थे? बेवकूफ़ थे? 'थर्ड-रेट' थे? हम तो ऐसा नहीं मानते। परंतु कठिनाई अब यह है कि 'उन अन्य समकालीनों पर विद्वान, आचार्यों, समालोचकों, साहित्य के इतिहासकारों ने क्या लिखा? कुछ लिख छोड़ा भी है या नहीं? अधिकतर नहीं- और इस कारण जीवित कवि-लेखकों पर लिखना हमारे प्राचीन-परंपरावादी आचार्यों ने सख़्त मना कर रखा था। अभी भी हमारे बहुत से हिंदी के प्रोफ़ेसरों, विद्वानों, समालोचकों का यही दृष्टिकोण है। लेकिन हमारी समझ में यह ग़लत दृष्टि है, बिल्कुल ग़लत दृष्टिकोण है; क्योंकि समकालीनों पर समकालीन नहीं लिखेंगे तो कौन लिखेगा? ज़रूरी नहीं कि समकालीन अपने समकालीनों के समर्थन, प्रशंसा या संस्तुति में ही लिखें- मगर, लिखें तो! अपने तटस्थ विचार लिखें। यही 'तटस्थ समालोचना'- यही 'निर्भीक विचार' सच्चा 'साहित्यिक न्याय' है, और आज इसकी ही परम आवश्यकता है।

यह 'साहित्यिक न्याय' कैसे- किस प्रकार होगा? सबसे पहले तो हमारे समकालीनों को यह सुदृढ़ संकल्प लेना होगा कि वे अपने समकालीन साहित्यकारों में- किसी न किसी पर अपने विचार लिखेंगे, समीक्षात्मक लेख लिखेंगे, अपनी पुस्तकों में उनपर चर्चा करेंगे। हममें जो समर्थ, साधन-संपन्न हैं, उन्हें चाहिए कि अपने किसी समकालीन कवि-लेखक की कोई पाण्डूलिपि छपवा दें। जो उनसे भी अधिक धन-साधन-संपन्न हैं, उन्हें चाहिए कि समय-यमय पर, अपने व्यय पर, कवि-सम्मेलन, साहित्यकारों के संबंध में विचार-गोष्ठी आदि आयोजित करें। किसी मृत-दिवंगत कवि-लेखक पर तो अक्सर कुछ साहित्यिक गोष्ठी या आयोजन होते हैं, परंतु किसी जीवित कवि-लेखक के भी जन्म-दिवस पर ऐसे आयोजन होने चाहिए- उसी कवि-लेखक से पैसे लेकर नहीं, बल्कि साधन-संपन्न साहित्यकारों द्वारा। पत्र-पत्रिकाओं में मान्य संचालकों एवं संपादकों को चाहिए कि जीवित समकालीनों पर भी समय-समय पर लेख- आलेख, संपादकीय, अग्रलेख आदि प्रकाशित करके समकालीन साहित्यकारों को 'साहित्यिक न्याय' दें। यह क्या कि मरणोंपरांत ही उन पर लेख छपे? 'श्रद्धांजलि' नहीं 'न्यायांजलि' चाहिए। आज हमें साहित्यिक न्याय की आवश्यकता है। साहित्य किसी भी देश, राष्ट्र और संस्कृति की बहुत बड़ी ताक़त है। केंद्र हो चाहे राज्य सरकारें, उन्हें सच्चे साहित्यकारों का सम्मान करना सीखें उनकी पाण्डूलिपियों को प्रकाशित करके, उन्हें सरकारी

सड़ी डुकरियें और रंगदारी का समाजशास्त्र

○ आर॰ एस॰ पटेल

हे संतजनो! आप में से ऐसा कौन है, जिसने अपनी माताओं के श्रीमुख से सड़ी डुकरियों उर्फ़ आलमोस्ट डैड बाडीज़ ऑफ द ग्रांडीज़ से संबंधित बुंदेली खंडी में अपने बच्चों को सुलाने के लिए इस आदि लोरी का गायन पाठ-भेद, स्थान-भेद और कंठ-भेद से करती मिल जायगी। खुद बिस्तर पर लेट कर छोटे बच्चों को अपने पेरों के पंजे में मिला कर उन पर बैठाकर घुटने मोड़ते हुए पैर हिलाकर बच्चों को सोने का सुख देती हुई तरुण माताएँ वस्तुत: एक तीर से दो शिकार करती हैं। सड़ी डुकरिया देट मींस द मदर इन लॉ की अपत्यक्ष दुगर्ति करते हुए लगे हाथ बच्चे सुलाने का काम भी कर देती हैं। यह जग प्रसिद्ध लोरी यह बताती है कि बेटे तेरा मूल्य एक कौड़ी में पाँच पसेरी यानी पच्चीस किलो लगभग है। तू नगण्य है। तब कौड़ी सबसे छोटी मुद्रा की इकाई रही होगी। माएँ गाती थीं।

कौड़ी क र कौड़ी के पाँच पसेरी के / उड़ गए तीतर बस गए मोर / सड़ी डुकरियाँ ले गए चोर।। चारों के घर खेती गई / बा डुकरिया मोटी गई / मन मन पीसै मन मन खाय / बेड गुरु के जूझन जाए / एक तीर डोला था, पताल पानी बोला था / चिकनी मुरिया चिकनी मुरिया कोई छीके न कोई बोले ना / राजा का बेटा आता है, दो दो कदम से दो दो कदम से, डुगडुग डुगडुग डुगडुग।।

हे प्यारे भाइयो कहीं अपन विषय से भटक जाएँ इसलिए बच्चों की कें-कें और चिल्ला चोट की परवाह न करते हुए हम अपनी प्यारी डुकरियों की ओर लौटते हैं। जिन्हें चोर ले जाते हैं, तो वह वहाँ भी मन भर यानी चालीस किलो गेहूँ पीसती और उतना खा जाती है। फिर अच्छों से जूझने निकल पड़ती है, वह हम से शिकायत न कर सके कि हिंदी के साहित्यकारों ने उन्हें भुला दिया। प्रिय बंधु, लिखने का मतलब यह बिल्कुल नहीं है कि पक्षपात हो रहा है। हम तो भैया जैसी बहू है वैसे बब्बा। जैसी डुकरिये वैसे डुकरा। ये जुम्मना व जमना। कोई काई से हम कम ना। जनाब नज़ीर अकबराबादी ने तो बुढ़ापे को लेकर अपना रोना रोते हुए फ़रमाया था-

आगे से परिज़ाद ये रखती थी, हमें घेर
आती थी चली आप जो होती थी, ज़रा देर
सो आके बुढ़ापे ने किया हाय ये अँधेर
जो दौड़ के मिलती थी वह अब लेती है मुँह फेर
हर चीज़ से होता है बुरा बुढ़ापा
आशिक़ को अल्लाह न दिखलाए बुढ़ापा

हे सज्जनो! बुढ़ापा और मौत धरती की चीजें हैं। देवता अजर अमर होते हैं। अजर अर्थात वे कभी बुढ़ाते नहीं। अमर अर्थात वे कभी मरते नहीं। मनुष्य की जवानी और जीवन को ललचाता रहा है। पृथ्वी लोक में मनुष्य ने आवंले की चटनी उर्फ़ च्यवनप्राश अयुर्वेद का ईजाद करके देह को बुढ़ापे से बचाने की जुगत लगाई है। उर्फ़ युक्ति ढूँढ़ी। पुश्ते और हलुए भस्में और दवाइयों, इंजेक्शन और कैप्स्यूल, लेह और पेय पदार्थ फटकार कर दम बाँधी। फिर मेकअप की ओर दौड़ा। जैसे पुरानी बिल्डिंग रंग-रोगन करके टनाटन कर दी जाती है, वैसे ही मेकअप कर-कराके बब्बा-बूढ़ी यंग जेंटलमेन और यंग लेडी बन जाते हैं। यही रंगदारी है प्यारे इसे ही कलर कहते हैं, आपका कलर है भैया आजकल। इस कटू वाक्य का सीधा अर्थ है कि ओरीजनल नहीं है, समथिंग इज़ कलर्ड। सबसे अच्छा और अमिट काला रंग ही माना जाता है, रसिक शिरोमणि छलिया जुगल किशोर भी ब्लैक यानी कृष्ण थे। बुंदेली में उन्हें कल्लू कहा जाएगा। काली कमली स्याम की चढ़े न दूजौ रंग। काले रंग पर दूसरा रंग नहीं चढ़ता इसलिए वे रंगदार भी हैं। द ओनली दाउ।

रंगदारी बुंदेलखण्ड की अपनी चीज़ है। रंग खीचने के लिए यह ज़रूरी है कि रंगदार अपनी औक़ात से ज़्यादा क्रोध प्रदर्शित करे। उसे इतना हो हल्ला करना ज़रूरी है कि वातावरण सहम जाए। को का केरव और करेव सो खार रव, बड़ी कउं की तोप आय। का समष्टि में अर्थ है कि सब का मुँह बंद। मेरे सामने कोई कुछ नहीं कहेगा और कहेगा सो पिटेगा। गाली गलौज रंगदारी की अनिवार्य शर्त है, उसका सामाजिक चिंतन जिस मूल माननीय प्रवत्ति का भयादोहण करता है। वह भय है। जो डर गया, सो मर गया, उसकी दुकान फ्री। सकल रंगदारी समाज में खादी वर्दी से दूर रहने का व्रत धारण किया जाता है। फटकी का मूलाधार जनसामान्य के बीच होता है। सयाने यह सीख देते रहते हैं। कम आमदनी और ख़र्चा भारी, जे लच्छन है मिटवें को। कम कूवत और गुस्सा भारी, जे लच्छन है कुटवें को।

हे सज्जनो! अब मैं जिस बालक की चर्चा करने जा रहा हूँ। उस लड़के ने सीटी बजाना अपनी आदत में शामिल कर लिया था। फ़ुर्सत मिलते ही ब्यूटी पार्लर के पास खड़ा हो जाता। मेकअप कर बाहर आती सुंदरियों को देखकर सीटी बजाना उसका नित्य नियम था। सीटी सुनना किस सुंदरी को प्रिय नहीं लगता। अर्थात सभी इस कार्य को पसंद करती हैं। वह सीटी बजाता तो दूसरी तरफ़ से कुछ न कुछ प्रसन्नता प्रकट की जाती। दिन मज़े से गुज़र रहे थे। दुबली-मोटी, गोरी-काली, लंबी-नाटी मतलब यह कि हर तरह की सुंदरियाँ उसे जानने लगी थीं। उसे ब्यूटी पार्लर के पास खड़ा देखते ही चाल में चटक, अदा में मटक और देह में लटक आ जाती थी। वह उसकी तपस्या का फल था, उसे अपना भविष्य बहुत उज्ज्वल नज़र आ रहा था। यार दोस्त समझाते बेटा यह काम अच्छा नहीं है, कभी न कभी जूते खाओगे। यह उपदेश सुनकर वह रियाज़ खैराबादी का शेर याद करने लगता-

शेख यह कहते हुए पीते गए-पीते गए
है बहुत बदमज़ा, अच्छी नहीं, अच्छी नहीं

मतलब यह कि भैया दुनिया में प्यारे यही काम है जो अच्छा है। किसी कवि ने कहा है कि

अच्छे को बुरा साबित करना दुनिया की पुरानी आदत है
इस मय को मुबारक समझ माना कि बहुत बदनाम है ये

सो अपने यार दोस्त को अँगूठा दिखाकर अपने प्यारे आशिक़ अली जी डटे रहे। ब्यूटी पार्लर से इस बार जो सुंदरी निकली, वह कुछ परिचित-सी लग रही थी। इन्होंने सीटी बजाई तो वह मुस्कराई, ये पीछे-पीछे चले वह आगे-आगे। यह मुस्कराए तो वह भी हँसने लगी। यह हँसने लगे तो वह खिलखिलाई। जोश में ये लंबे-लंबे डग भरते हुए उसके साथ-साथ चलने लगे। इन्होंने हल्की सीटी बजाई और पूछा, आप कहाँ रहती हैं। वह खड़ी हो गई। इनके गाल पर चिकोटी काटी और बोली, ''बब्बू ठठरी बदे। हम तुमाई आजी बऊ आंय।''

हे पाठको! मेरा लेख यहीं समाप्त होता है। आगे क्या हुआ, यह बस आपकी कल्पना पर छोड़ता हूँ। हाँ, उस दिन से उस ब्यूटी पार्लर के पास सीटी नहीं बजती।

संपर्क : गार्ड, पश्चिमी मध्य रेलवे, कटना, मो॰-पो॰ गिरवर, जिला सागर- 470006 (म॰प्र॰)

भारतीय संविधान के परिप्रेक्ष्य में आरक्षण का औचित्य

○ सिद्धेश्वर

हम सब इस बात से पूर्णत: अवगत हैं कि देश का एक बहुत बड़ा तबका सदियों तक शोषित और वंचित रहा है। इस तबके को मुख्य धारा में लाने के लिए आज़ादी के बाद से ही प्रयास आरंभ हो गए थे। वैसे भी इस देश की आज़ादी की लड़ाई का लक्ष्य केवल ब्रिटिश शासकों को अपदस्थ कर उनके स्थान पर भारतीयों को स्थापित कर देना ही नहीं था, अपितु भारतीय समाज को शोषण, दमन, अत्याचार, अन्याय, असमानता, भूख और बीमारी से मुक्त कर उनमें बदलाव लाना भी था। यही वजह थी कि भारतीय संविधान की धारा 15 (4), 16 (4) एवं 330, 332 और 335 के तहत सरकारी नौकरियों में अनुसूचित जाति के लिए 15 प्रतिशत और अनुसूचित जनजाति के लिए 7 प्रतिशत आरक्षण का प्रावधान किया गया और सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से कमज़ोर व्यक्तियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों को विशेष अवसर देने की बात कही गई है। तद्नुसार संविधान के अनुछेद 340 में राष्ट्रपति को अधिकार दिया गया कि सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से कमज़ोर जातियों, धार्मिक अल्पसंख्यकों और महिलाओं के हितों को प्रोत्साहित एवं सुरक्षित रखने हेतु वह आयोग का गठन कर सकते हैं। संविधान के उपर्युक्त प्रावधानों के अनुछेद 390 के अंतर्गत राष्ट्रपति ने सन् 1958 के 27 जनवरी को सुप्रसिद्ध गाँधीवादी एवं विद्वान विचारक काका कालकर की अध्यक्षता में प्रथम पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया गया जिसने भारत सरकार को सन् 1955 के 31 मार्च को सौंपे प्रतिवेदन में 2399 जातियों को पिछड़े में सूचीबद्ध कर उनके उत्थान, कल्याण एवं विकास के लिए आरक्षण तथा अनेक सुविधाएँ प्रदान करने की अनुशंसा की। परंतु भारत सरकार के द्वारा उसे लागू करने की बात तो दूर, संसद में न तो उस पर बहस कराई गई और न चर्चा ही। उसे रद्दी की टोकरी में हमेशा के लिए डाल दिया गया। इस बीच भारत की बहुसंख्यक आबादी अर्द्धमानवीय स्थिति में रहने को विवश हुई और आज़ादी के चार दशक के गुज़रने के बाद भी उनके सपने जस के तस रहे। अपने देश के शासकों ने भारत के अधिकांश लोगों की तरह तंगहाली, सामाजिक, आर्थिक विषमता, अन्याय, शोषण, भूखमरी और बीमारी से निजात नहीं दिलाया, जबकि आज़ादी के बाद राजनीति, व्यवसाय उद्योग, व्यापार, वाणिज्य, अकादमिक तथा नौकरशाही वर्गों पर उच्च जातियों के प्रतिभाशाली और कुशल लोगों का कब्ज़ा और देश की 85 प्रतिशत आबादी अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यक तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लोग अवमानवीय हालत में जीते रहे। निश्चित रूप से स्वतंत्रोत्तर भारत में संविधान द्वारा यहाँ के लोगों को दिखाए गए सामाजिक न्याय और समानता के सपने चकमाचूर कर दिए गए और प्रतिभा एवं कुशलता और सबके लिए समान अवसर के नाम पर निहित स्वार्थी लोगों के द्वारा समाज के हाशिए पर खड़े लोगों के अरमानों को चूर-चूरकर दिए गए। इसका परिणाम है कि आज़ादी के छ: दशक बीत जाने के बावजूद अमीर-ग़रीब के बीच खाई और बढ़ती जा रही है। जाति प्रथा, छुआ-छूत की बीमारी ने न केवल समाज की कमज़ोर जातियों को प्रशासन और शिक्षा के क्षेत्र में जाने से वंचित किया है, बल्कि समाज के बहुसंख्यक मानवीय प्राणी को अधोगति का जीवन जीने को विवश किया है। ऐसी विषम और विकट स्थिति में एक मात्र उपाय यह बच जाता है कि ऐसे लोगों को समान स्तर पर लाने के लिए कुछ ऐसी व्यवस्था की जाए जिसे समाजिक समानता (Social Eqality) के लिए हालात उत्पन्न हो सके, क्योंकि इसी सामाजिक समानता की बात संविधान की गई है। इसके मद्देनज़र सरकारी नौकरियों में आरक्षण देने का प्रावधान किया गया।

तद्नुसार प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के नेतृत्व में सन् 1977 में बनी केंद्र सरकार की जनता पार्टी की सरकार ने 1977 में ही अपने चुनावी घोषणा-पत्र में पिछड़े वर्ग को आरक्षण देने का वादा किया और इसी आश्वासन के अनुपालन में भारतीय संविधान के अनुच्छेद 340 के तहत भारत के राष्ट्रपति ने 1 जनवरी, 1979 को पूर्व सांसद एवं बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री बी॰पी॰ मंडल की अध्यक्षता में द्वितीय पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया जिसने 31 दिसंबर 1980 को अपनी रिपोर्ट भारत सरकार को सौंप दी। मंडल आयोग ने भारतीय संविधान के अनुच्छेद 15 (4) तथा 340 के प्रावधान के अनुसार सामाजिक एवं शैक्षिणिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग को विशेष सुविधा प्रदान करने हेतु इन जातियों की एक वृहत् सूची बनाई जिसमें 5 प्रतिशत जनसंख्यावाली 3743 जातियों को पिछड़े वर्ग में रखा और इन्हें सरकारी नौकरियों में 27 प्रतिशत आरक्षण देने के साथ-साथ कई शैक्षणिक रियायतें, आवासीय स्कूलों की स्थापना, व्यवसायिक प्रशिक्षणोंन्मुख शिक्षा, वैज्ञानिक तकनीकी तथा व्यवसायिक संस्थानों में नामांकन में आरक्षण और विशेष कोचिंग की व्यवस्था तथा वित्तीय सहायता आदि की सुविधाएँ प्रदान करने की अनुशंसाएँ की गई। मंडल आयोग की इन सिफ़ारिशों को केंद्र में श्री विश्वनाथ प्रताप सिंह के प्रधानमंत्रित्व में बनी सरकार के द्वारा 7 अगस्त, 1990 से लागू करने की अधिसूचना 13 अगस्त, 1990 को जारी की गई जिसके द्वारा केंद्रीय सेवाओं एवं केंद्रीय उपक्रमों में सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग के लोगों के लिए 27 प्रतिशत पद आरक्षित करने की व्यवस्था की गई।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत में सरकारी सेवा को सदैव प्रतिष्ठित और शक्ति के प्रतीक के रूप में माना गया है। सरकारी नौकरियों में अन्य पिछड़े वर्गों के प्रतिनिधित्व को बढ़ावा देकर हम उन्हें देश के शासन में शामिल होने का अनुभव कराते हैं। जब कोई अनुसूचित जाति, जनजाति अथवा पिछड़े वर्ग का एक उम्मीदवार जिलाधिकारी या

आरक्षी अधीक्षक बन जाता है तो उस पद से प्राप्त होने वाले फ़ायदे केवल उसके परिवार के सदस्यों तक ही सीमित रहते हैं, किंतु इस बात का मनोवैज्ञानिक प्रभाव इतना ज़्यादा होता है कि उक्त कमज़ोर वर्ग के उम्मीदवार का समूचा समुदाय अपने आपको सामाजिक रूप से उन्नतअनुभव करने लगता है। सामान्यत: जब कोई स्थाई लाभ समुदाय को नहीं मिलते हैं, तब यह भावना शक्ति के गलियारे में अब उनको 'अपना आदमी' है, एक एहसासवर्द्धक के रूप में कार्य करती है।

किसी लोकतांत्रिक ढाँचे में प्रत्येक व्यक्ति और समुदाय को शासन में भाग लेने के लिए वैध अधिकार और आकांक्षाएँ प्राप्त करने का हमारे भारतीय संविधान में प्रावधान है। कोई भी स्थिति जिसके परिमाण स्वरूप देश की जनसंख्या के लगभग 85 प्रतिशत लोग यदि उक्त अधिकार से वंचित हो जाते हैं, तो उसमें शीघ्र सुधार की ज़रूरत है। आरक्षण का प्रावधान इसी की ज़रूरत को पूरा करता है। मगर योग्यता को दरकिनार कर कुछ तबकों को आरक्षण प्रदान कर आगे बढ़ाने की इस नीति में अनेक ख़ामियाँ हैं। आख़िर तभी तो उच्चत्तम न्यायालय द्वारा केंद्रीय शिक्षण संस्थानों में पिछड़े वर्गों को दिए जाने वाले 27 प्रतिशत आरक्षण देने के केंद्र सरकार के फ़ैसले पर रोक लगाई गई। आपत्ति उठाई गई है कि 76 साल पहले 1931 ई॰ में आख़िरी जातिगत जनगणना को आधार बनाकर अन्य पिछड़ा वर्ग आरक्षण (ओबीसी) कैसे तय किया जा सकता है? इस संदर्भ में कहा जा सकता है कि मंडल आयोग की रिपोर्ट पर इसी उच्चत्तम न्यायालय की नौ सदस्यीय बेंच ने 1931 ई॰ को ही आँकड़ों के आधार को आख़िर कैसे सही माना था और 1992 ई॰ में पिछड़ी जाति के लोगों को नौकरियों में आरक्षण आख़िर कैसे मिल रहा है? यह तो अपने आप में विरोधाभास है। प्रश्न यह यह उठता है कि जब उच्चत्तम न्यायालय की ही नौसदस्यीय न्यायाधीशों की खंडपीठ ने नौकरियरों में आरक्षण के लिए 1931 ई॰ के आँकड़ों को मान लिया, तो अब शिक्षा में आरक्षण देने के लिए नए आँकड़े क्यों माँगे जा रहे हैं?

उच्चत्तम न्यायालय के फ़ैसले के बाद एक ओर जहाँ ग़ैर आरक्षित वर्गों के छात्रों एवं उनके संगठनों के बीच खुशी की लहर दौड़ गई, तो वहीं दूसरी ओर आरक्षित तबक़ों के छात्र मायूस नज़र आए। इससे देश के अंदर व्याप्त विरोधाभास उजागर हुआ। उच्चत्तम न्यायालय के फ़ैसले से जो छात्र समूह और संगठन खुश नज़र आए उन्हें अपनी यह ज़िम्मेदारी नहीं भूलनी चाहिए कि यह उनका दायित्व बनता है कि वे उनकी समस्याओं पर ग़ौर करें जो किन्ही कारणों से उनकी ज़ैसी शिक्षा नहीं हासिल कर पा रहे हैं। खुशी और ग़म के इस दौर में किसी को भी यह नहीं भूलना चाहिए कि जो मायूस हैं वे हमारे अपने हैं और उनका मनोबल न गिरने पाए। जिन छात्रों ने खुशी के लड्डू बाँटे उन्हें यह नहीं भूलना चाहिए कि उनकी खुशी देखकर देश का एक बड़ें वर्ग उनके ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ने के लिए कमर कस रहा होगा। क्या यह सामाजिक विभाजन देश की एकता के लिए ख़तरा नहीं? इससे तो कुल मिलाकर वोट बैंक बनाने वाले राजनीतिक दलों के स्वार्थों की पूर्ति होगी।

ऐसा प्रतीत होता है कि देश का एक बड़ा तबक़ा राजनीतिक दलों की यह चाल नहीं समझ पा रहा है कि वे उन्हें सिर्फ़ एक वोट बैंक के रूप में देख रहे हैं। यदि राजनीतिक दल यह सोच रहे हैं कि वे आरक्षण के ज़रिए पिछड़ेपन अथवा सामाजिक विषमता को दूर कर सकेंगे तो यह सही नहीं, दिखावा है, क्योंकि आज़ादी के साठ साल के बाद तक अथवा आरक्षण देने के डेढ़-दो दशक के बाद भी सामाजिक विषमता कहाँ तक दूर हुतई नज़र आ रही है? मुझे तो ऐसा लगता है कि आरक्षित पदों पर अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा अन्य पिछड़े वर्गों के उम्मीदवारों को बड़े पैमाने पर ले लेने से सरकारी सेवाओं के गिरने की आशंका भी केवल एक सीमा तक न्यायोचित लगती है, किंतु क्या यह मानना संभव है कि योग्यता के आधार पर चुने गए सभी उममीदवार ईमानदार, कुशल, परिश्रमी और निष्ठावान साबित होते हैं? कदापि नहीं। यदि ऐसा होता, तो आज़ादी के बाद लगभग चार दशक तक तो सभी सरकारी सेवाओं के शीर्ष अथवा निम्न पदों पर मुख्यत: खुली प्रतियोगिता द्वारा लिए गए उम्मीदवारों के बावजूद शासनतंत्र भ्रष्टाचार, बेईमानी, अकुशलता और अराजकता के चलते राष्ट्र बाधित रहा है और सच माने में यही निष्पादन हमारी नौकरशाही का कोई सूचक है, तो इसने वास्तव में अपने आपमें सही अर्थों में गौरवान्वित नहीं किया है। तथापि इसका मतलब यह नहीं कि आरक्षित पदों पर चयनित उम्मीदवार अच्छा कर ही पाएँगे। लेकिन इस बात की संभावना है कि अपनी सामाजिक तथा सांस्कृतिक बाधाओं की वजह से वे सामान्यत: निरपेक्ष और सक्षम हो सकते हैं। किंतु इसके विपरीत उनके समाज के कमज़ोर वर्गों की कठिनाइयों और समस्याओं की प्रत्यक्ष जानकारी होने का बहुत लाभ होगा। सर्वोच्च स्तर पर क्षेत्र कार्यकर्ताओं और नीति-निर्माताओं के लिए यह काम महत्त्व की बात नहीं है।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि चूंकि मानव प्रवृत्ति उत्सुकता प्रधान होती है, इसलिए आरक्षण के बल पर सरकारी नौकरियों में आने के बाद वर्गहीन समाज में भी अंतत: एक 'नया वर्ग' बन जाता है जो केवल अपने परिवार तक सीमित हो जाता है। अपने समुदाय के हित की बात तो दूर अपने सगे-संबंधियों यहाँ तक कि अपने सहोदर भाई-भतीजे की ओर भी उसकी नज़र नहीं जा पाती है। कड़ुवा सच तो यह है कि आर्थिक रूप से सबल होने के बाद वह वर्ग अपने समुदाय से कटे-कटे रहकर तथाकथित उच्च वर्ग के साथ हिलना-मिलना ज़्यादा पसंद करता है। इस दृष्टि से अब विवाद इस बात का है कि ओबीसी कौन है और इसका मापदंड क्या है? संविधान के

प्रावधानों के अनुसार आरक्षण का लाभ उन वर्गों के लिए है, जो सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक रूप से पिछड़े हुए हैं, किंतु अब तक अन्य पिछड़े वर्गों के मापदंड का आधार 1931 ई० की जनगणना ही है। जबकि इन 76 वर्षों में एक ही जाति में ही कई ऐसे लोग हैं जिनके एक तबके की सारी मूलभूत ज़रूरतें पूरी हुईं हैं और कइयों की नहीं हुईं। अनुसूचित जाति-जनजाति हो या अन्य पिछड़ी जातियाँ, उनके एक तबके के रोज़गार, व्यवसाय, आमदनी के स्रोत एवं शिक्षा में मूलभूत बदलाव अथवा सुधार देखने को मिल रहा है। कहने का तात्पर्य यह है कि ऐसी कई पिछड़ी जातियाँ अब अगड़ी हो चुकी हैं और ऐसी तथाकथित पिछड़ी जातियों के लोग जो आर्थिक रूप से सबल हो चुके हैं आज भी आरक्षण की इस योजना का समुचित लाभ उठाना चाहते हैं, उन्हें अपने समुदाय के अत्यंत पिछड़े लोगों के प्रति हमदर्दी तनिक भी नहीं है। इन्हीं को देखकर अगड़े वर्ग के लोगों की आँखों में किरकिरी आ रही है, जो स्वभाविक है। वास्तव में देश की आबादी के कुल 50 प्रतिशत अन्य पिछड़े वर्ग में से मात्र कुछ ही प्रतिशत ऐसे लोग हैं जिन्हें आरक्षण का लाभ मिलता रहा है और बाक़ी लोग उससे आज भी वंचित हैं। इस दृष्टि से देखा जाए तो जो पिछले सालों से आरक्षण का फ़ायदा उठाकर अब अगड़े की श्रेणी में आ चुके हैं उन्हें आरक्षण के लाभ से यदि वंचित किया जाता है, तो इसमें कोई अनुचित नहीं है,बल्कि सच तो यह है कि उनके वंचित होने से अबतक हाशिए पर जो अन्य पिछड़े वर्ग के लोग हैं, उन्हें आरक्षण का लाभ मिल सकेगा। हालांकि आरक्षण की मुख्य विशेषता यह नहीं है कि आरक्षण देने के बाद उस वर्ग में समानता आ जाएगी, तथापि यह ज़रूर है कि जहाँ एक ओर आरक्षण के द्वारा सरकारी सेवाओं पर से अगड़ी की जकड़ और पकड़ निश्चित रूप से कुछ ढीली हो जाएगी वहीं, दूसरी ओर कमज़ोर वर्गों में अपने देश के कार्य-संचालन में भाग लेने की भावना जागृत होगी और फिर राष्ट्रीयता की भावना देश के विकास के प्रति निष्ठा और राष्ट्रीय चेतना का संचार हो जाएगा।

यह बात ठीक है कि कुछ वर्गों के लिए आरक्षण किए जाने से दूसरे वर्ग के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती है, लेकिन क्या केवल ईर्ष्या को सामाजिक सुधार के विरूद्ध नैतिक विशेषाधिकार के रूप में प्रयोग करने की अनुमति दी जानी चाहिए? अँग्रेज़ों के भारत छोड़ने पर काफ़ी ईर्ष्या हुई थी। सभी गोरों के मन में ईर्ष्या पैदा होती है जब काले लोग दक्षिण अफ़्रिका में रंगभेद के विरूद्ध विरोध करते हैं।

इसमें तनिक संदेह नहीं कि आरक्षण नीति में कुछ ऐसे पहल भी हो सकते हैं और हो रहे हैं जिनसे आरक्षण से प्रभावित लोगों में कटुता बढ़ी है और उग्रता भी। उन्हें लग रहा है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है और भेदभाव बरता जा रहा है। दूसरी ओर आरक्षण समर्थकों, जिन्हें आरक्षण से लाभ मिल रहा है, ऐसा लग रहा है कि उनके उत्थान में यह रामवाण का काम करेगा और उनकी काया पलट हो जाएगी। जबकि ऐसी बात है नहीं। भ्रम दोनों ओर से है जिसे दूर किया जाना आवश्यक है। नहीं तो क्या पता, यह आग कब भड़क उठे, क्योंकि वोट बैंक को अपनी ओर करने में प्राय: सभी राजनीतिक पार्टियाँ तो गिद्ध की तरह उनपर झपट्टा मारने के लिए तैयार बैठी हैं। अतएव इस समस्या पर बड़ी गंभीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है।

सच तो यह है कि आरक्षण का औचित्य आज इसलिए भी अधिक दिख रहा है कि आज़ादी के बाद सब के लिए और समान शिक्षा की नीति अपनाई जानी चाहिए थी, जो छह दशक बीत जाने के बावजूद नहीं हो सका है। अगर स्कूली शिक्षा में भेद-भाव का अंत हो जाए, तो उच्च शिक्षा और सरकारी नौकरियों में आरक्षण की आवश्यकता ही नहीं रहेगी। आरक्षण को लेकर चल रही बहस के बीच यह सवाल अक्सर उठता है कि आरक्षण क्यों और कब तक? आख़िर संविधान निर्माताओं ने भी तो आरक्षण देने का प्रावधान यह सोचकर नहीं दिया होगा कि हमेशा के लिए रहेगा। मगर वोट बैंक और राजनीतिक दलों की स्वार्थपरता को देखते हुए इसके ख़त्म होने के आसार तो फ़िलहाल नहीं लग रहा है। यदि देश के सभी बच्चों को एक जैसी पढ़ाई का मौक़ा उपलब्ध करा दिया जाए तो आरक्षण की ज़रूरत अगले पाँच-दस साल में समाप्त हो सकती है। मगर आज शिक्षा का जो परिदृश्य है उसमें यह बात असंभव-सी लगती है, क्योंकि शिक्षा कुलीन वर्ग के हाथ में एक मज़बूत हथियार है जिनका इस्तेमाल कर वह समाज में अपनी अलग हैसियत बनाता है और उसे बरक़रार रखना चाहता है जिसका शिकार केवल अनुसूचित जाति, जनजाति और अन्य पिछड़े वर्ग के लोग ही नहीं हैं, बल्कि इसकी मार सवर्ण गरीबों सहित गाँवों व क़स्बों में रहने वाले लोगों पर भी पड़ती है। इसलिए हमारी समझ से (कॉमन स्कूल सिस्टम) समान विद्यालय पद्धति लागू करना अनिवार्य है। कई पश्चिमी देशों में यह आवश्यक होता है कि बच्चों का नामांकन सबसे नज़दीक के स्कूल में कराया जाए। क्या ऐसी नीति अपने देश में नहीं अपनाई जा सकती? यदि ऐसा होता, तो पिछड़ेपन को समाप्त करने के लिए हमारे संविधान में किए गए ठोस और कालबद्ध राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धांत (Directive Principles of State Policy) को लागू किया गया होता। इसमें कहा गया है कि 'दस साल के अंदर भारत के सारे बच्चों के लिए 14 साल की उम्र तक की शिक्षा अनिवार्य तौर पर लागू करना होगा। इसी आधार को लागू करने पर ही आरक्षण को समाप्त किया जा सकता हैं, किंतु आज तक इसका पालन नहीं हुआ, क्योंकि समाज की व्यवस्था ऐसी है कि देश की राजनीति, संस्कृति, धर्म और साहित्य के क्षेत्र में लगे अधिकतर कर्णधार संभ्रांत और उच्च कुल के लोग हैं जिनकी मानसिकता से हम सभी परिचित हैं। इस पूँजीवादी व्यवस्था में आज के शासक तथा नौकरशाह समता एवं समानता पर आधारित शिक्षा के लिए क़तई तैयार नहीं हैं, क्योंकि देश के हर निर्णायक पदों पर उनके लोग बैठे हैं जहाँ दलित, शोषित, पीड़ित, पिछड़ों एवं समाज के हासिए पर खड़े लोगों को न्याय नहीं मिलता। कारण कि वे अपनी सुविधाओं को बरक़रार रखना चाहते हैं। यही कारण है कि आज आरक्षण की गुहार लगाई जा रही है। इस दृष्टि से देखा जाए तो संविधान के परिप्रेक्ष्य में आरक्षण का औचित्य आज के असमानता पर आधारित समाज में न्याय के लिए आवश्यक ही नहीं, लाज़िमी भी है।

संपर्क : 'दृष्टि', यू० 207, शकरपुर, विकास मार्ग, दिल्ली-92
दूरभाष : 011-22530652/ 22059410

हिंदी दिवस के अवसर पर

ख़तरे की कगार पर खड़ी क्षेत्रीय भाषाएँ

❍ सिद्धेश्वर

सभ्यता के विकास के साथ मनुष्य ने अपने भावों तथा विचारों की अभिव्यक्ति के लिए 'भाषा' का अविष्कार कर लिया। भाषा की प्राप्ति से मनुष्य सच्चे अर्थों में मनुष्य पदवाच्य हुआ। इसी भाषा के सहारे मनुष्य अतीत की स्मृतियों, वर्तमान की योजनाओं और भविष्य के लिए स्वप्नों को साहित्य में उतारा है। वाणी का वरदान पाकर मनुष्य प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ हुआ। लेखनी की शक्ति से समृद्ध हो वह ऊँचे से ऊँचे शिखर के समक्ष पहुँचा। इस दृष्टि से भाषा मनुष्य चेतना की स्वत: अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है।

भाषा विचारों की संवाहिका होती है। विचार परिवेशजन्य होते हैं। भौगौलिक स्वरूप के आधार पर परिवेश निर्भर होता है। इसी के आधार पर खान-पान वेश-भूषा, आचार-व्यवहार, मनोरंजन एवं कलाओं की विभिन्नता होती है। अगर किसी भाषा की पैठ व्यापक समाज की डयेढ़ी से लेकर आँगन तक है, तो चाहे वह सिंहासन पर बैठी हो या मचिया पर, कोई भी उसका बाल बाँका नहीं कर सकता। लेकिन यदि वह अपने अभिजात अहम् को सबसे ऊपर रखने के कारण शास्त्रीयता, कुलीनता की सीमाएँ नहीं लाँघती, तो सोने का सिंहासन होने के बावजूद कोई उसकी ओर देखेगा भी नहीं सिवाय उन कुछ विप्रों, भाटोंके, जो उसकी खाते और गाते हैं।

इस देश में भाषाई विविधता रही है और भाषाई विविधताओं के बावजूद उसमें भावात्मक तथा सांस्कृतिक एकता का सूत्र सदा से विद्यमान रहा है। क्योंकि सभी की आत्मा एक ही रही है, जिसमें समाज को सही दिशा मिली और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा मिला। भाषा, संस्कृति की वाहिका ही नहीं होती, बल्कि वह संस्कृति भी होती है। भाषा की मृत्यु के साथ संस्कृति की भी मृत्यु हो जाती है। आज हमारे देश में यदि सांस्कृतिक पतन हो रहा है तो उसका एक कारण अँग्रेज़ी भाषा भी है। जिस देश का सारा काम-काज, प्रशासन, शिक्षा, न्याय वितरण, व्यापार-उद्योग विदेशी भाषा में चलता है, उसकी अपनी संस्कृति ज़िंदा नहीं रह सकती।

कहना नहीं होगा कि सूचना तकनीक, भूमंडलीकरण और उदारीकरण की वजह से जहाँ कुछ भाषाओं की दादागिरी कायम हुई है, वहीं क्षेत्रीय भाषाएँ ख़तरे के कगार पर खड़ी हैं। अमेरिका के स्वाटमोर विश्वविद्यालय के भाषाविदों ने हाल ही में जानकारी दी है कि जिस क्षेत्र के जीवजंतुओं और पादपों की प्रजातियाँ लुप्त होती जा रही

हैं, उनके बचाने का नुस्ख़ा उसी क्षेत्र के लोगों की स्थानीय भाषा में छिपी होती है। उसने यह भी जानकारी दी है कि जैसे-जैसे क्षेत्रीय भाषाएँ ख़त्म होती जा रही हैं, दुर्लभ पशु, पक्षी और पादपों के संरक्षण का यह अनमोल ख़ज़ाना भी खोता जा रहा है।

इस समय पूरी दुनियाँ में तक़रीबन सात हज़ार भाषाएँ हैं। दुनिया के भाषाविदों के शोध के अनुसार इनमें से लगभग छ: हज़ार भाषाएँ ख़त्म होने के कगार पर हैं। हर दिन कहीं न कहीं एक भाषा लुप्त होती है। अब दुनिया में केवल 65 भाषाएँ ही बची हैं, जिन्हें एक करोड़ से ज़्यादा लोग बोलते हैं। खुद भारत में 2001 ई॰ में हुई जनगणना के आँकड़े बताते हैं कि लगभग 450 भाषाएँ ऐसी बची हैं, जिन्हें बोलने वाले 10 हज़ार से भी कम लोग बचे हैं। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस शताब्दी के अंत तक दुनिया की आधी भाषाएँ हमेशा के लिए दफ़न हो जाएँगी।

भारत में काफ़ी समय बाद भाषाओं पर सर्वेक्षण हो रहा है। सच कहा जाए तो भाषाओं को बचाने का काम बहुत गहराई से इसलिए होना चाहिए, क्योंकि यहाँ अपनी अमूल्य धरोहर को बचाने और खोजने का यह बेहतर अवसर हो सकता है। इसके पूर्व इस देश में भाषाओं का सर्वेक्षण 1927 ई॰ में और 1998 ई॰ में हुआ था। सन् 1991 ई॰ की जनगणना में भाषाओं पर महत्त्वपूर्ण आँकड़े मिले थे। अँग्रेज़ों के शासनकाल में भाषाओं के सर्वेक्षण का काम जार्ज अब्राह्म ने किया था।

विश्व के आँकड़े बताते हैं कि आधी भाषाएँ लुप्त हो रही हैं। समय रहते यदि काम नहीं हुआ तो बहुत कुछ हाथ से निकल जाएगा। आज की स्थिति यह है कि पूरी दुनिया में 4 प्रतिशत लोग विश्व की 96 प्रतिशत भाषा बोलते हैं और दस हज़ार से भी कम लोग दुनिया की 92 प्रतिशत भाषाएँ बोलते हैं। इसी प्रकार एक हज़ार से भी कम लोग दुनिया की 28 प्रतिशत भाषाएँ बोलते हैं और दक्षिण अफ्रीका के तमाम क़बीलों की 80 प्रतिशत भाषाओं को लिपिबद्ध नहीं किया गया है।

भारत में भाषाओं पर हो रहे काम को देखकर यही लगता है कि भाषाई भिन्नता गौरव न होकर बोझ है। संभवत: यही कारण है कि सन् 1927 ई॰ के बाद इस पर या तो गंभीरतापूर्वक काम हुआ ही नहीं या हुआ भी है तो बहुत निचले स्तर पर। सन् 1991 ई॰ में 1652 भाषाओं को अपनी व्याकरण वली मातृभाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया था, जबकि उन 1796 भाषाओं को अन्य मातृभाषाओं के रूप में स्वीकार किया गया था।

चीन में भाषाओं के संरक्षण में महत्त्वपूर्ण काम हो रहा है। वहाँ भाषाई विविधता को समझने, संवारने में 1956 से

लेकर 1500 से ज़्यादा इलाक़ों के लिए खंगाला गया है, जिसमें 90 क्षेत्र जिब्बत के हैं। 200 से अधिक चीनी भाषा के इलाके हैं। चीन में 16 ऐसे भाषाओं को भी लिपिबद्ध किया गया है, जिनका अस्तित्व ख़तरे में था। इसके बाद यहाँ सन् 1986-90 ई॰ के बीच 70 शोधकर्ताओं ने 700 से ज़्यादा क्षेत्रों की भाषाओं का फिर से अध्ययन कर अनेक आकड़ें इकट्ठे किए। चीनियों ने जो ढाँचा तैयार किया था, उसी आधार पर लुप्त हो रही भाषाओं पर काम हो रहा है।

भारत की स्थिति चीन की जैसी नहीं दिखती, क्योंकि यहाँ के लोगों में ना तो अपनी भाषाओं से प्रेम है, ना ही अपनी बोलियों को बचाने की लालसा है। यहाँ के थोड़े भी पढ़े-लिखे लोग ख़ासकर युवा वर्ग अपनी बोली सुनते ही नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। यहाँ तक कि अब तो शहरों में रहने वाले बड़े पदों पर आसीन कल के गवई अपने बच्चों से अपनी मातृभाषा भी बोलने से कतराते हैं। यही वजह है कि नई पीढ़ी कश्मीरी, पंजाबी, बंगाली, मलयालम, कन्नड़, तमिल, तेलुगु जैसी महत्त्वपूर्ण भाषाओं से अनजान रह जा रही है।

भारत में 18 भाषाएँ तथा 100 से ज़्यादा सक्रिय भाषाएँ हैं और इनमें 1700 से ज़्यादा बोलियाँ हैं। कहना नहीं होगा कि इनमें यदि कुछ दर्जन बोलियाँ भी लुप्त हो गईं, तो वह न केवल इस देश की, बल्कि विश्व की धरोहर की अपूरणीय क्षति होगी। समय तेज़ी से बीत रहा है और तमाम भाषाएँ धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं।

सन् 1995 में जापान में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय अधिवेशन में विद्वानों ने प्रमाणों के साथ तर्क दिए थे कि विश्व की 6760 भाषाओं में 234 भाषाएँ पहले ही दम तोड़ चुकी हैं। वैश्वीक्रण और कंप्यूटरीकरण के बाद जहाँ कुछ विशेष भाषाओं और प्रतीकों का प्रभाव तेज़ी से बढ़ा है, वहीं तमाम क्षेत्रीय भाषाओं में तंज़ी से दबाव बढ़ा है। मुझे ऐसा लगता है कि हाइटेक कम्यूनिकेशन का दावा करने वाले यह भूल जाते हैं कि इनके नाम पर मानव सभयता को जाने-अनजाने में इसकी कितनी भारी क़ीमत चुकानी पड़ रही है। जापान की राजधानी टोकियो में आयोजित अधिवेशन में पधारे भाषाविदों और विशेषज्ञों ने तो यह भी दावा किया था कि शताब्दी में 70 प्रतिशत भाषाएँ यानी 4732 भाषाएँ क्रियात्मक संप्रेषण नहीं रख पाएँगी। अधिवेशन में व्यक्त विचारों से यह स्पष्ट है कि क्षेत्रीय भाषाओं की अस्मिता पर ख़तरे मंडरा रहे हैं। यदि हमें अपनी संस्कृति और संस्कारों को बचाना है, तो भाषा को बचाना होगा, क्योंकि भाषा का संबंध संस्कृति और संस्कार से है। भारत के संबंध में देखा जाए, तो यहाँ की सभी भाषाएँ हिंदी की बहनें हैं। इसलिए ज़रूरत इस बात की है कि हम हिंदी तथा सभी भारतीय भाषाओं की प्रगति तथा ताल-मेल के लिए प्रयत्नश्यील रहें, क्योंकि समस्त भारतीय भाषाओं में भारतीय आत्मा छिपी हुई है, अस्मिता छिपी हुई है, स्वाभिमान और गौरव छिपा हुआ है।

संपर्क : 'दृष्टि', यू॰ 207,
विकास मार्ग, शकरपुर,
दिल्ली-110092

पृष्ठ 11 का शेषांश

राजनीति पर अपनी क़लमें चलाईं, किंतु आज के क़लमकारों की क़लम क्यों शिथिल पड़ चुकी हैं? क्या कारण है कि आज के क़लमकार अपने देश व परिवेश से कटते जा रहे हैं? ऐसा प्रतीत होता है कि क़लमकारों में भी सामाजिक प्रतिबद्धता और राष्ट्रीय चेतना का अभाव होता जा रहा है और वे भी संकीर्ण विचारधाराओं से ऊपर नहीं उठ पा रहे हैं। देश के प्रति, जनता के प्रति उनका जो दायित्व है उससे वे भी विमुख होते जा रहे हैं। साहित्यकार तो वही है, जो व्यक्ति के दुःख-सुख, दर्द-पीड़ा, प्यार-व्यथा, वेदना को अपना बना सकता है। व्यक्ति समाज के यथार्थ से हटकर रचनाकार नहीं हो सकता। मनुष्य का मनुष्य के बीच से बढ़ती खाई को पाटने का सार्थक प्रयास करना आज हर सजग साहित्यकार की ज़िम्मेदारी है, किंतु इन सबों से आज के साहित्यकार विरक्त होते दिख रहे हैं जो चिंता का विषय है। हम ऐसा महसूस करते हैं कि आज के साहित्यकारों में अजीब तरह के विरोधी तत्त्वों का जमाव उनके अंदर होता जा रहा है। वे भी उद्धत और कायर होते जा रहे हैं, पद, पैसा और पुरस्कार पाने के पीछे आज गलत रास्ते अख़्तियार कर रहे हैं। उनकी असमर्थता और विवशता पग-पग पर देखी जा सकती है।

क्या यह सच नहीं कि साहित्यकारों ने साहित्यिक कुरीतियों को मात्र नंगा किया और फिर राजनीति प्रशासन से प्राप्त प्यार भरी कॉफ़ी की प्याली की चुस्की ली जिसके परिणामस्वरूप ही उनकी क़लम कमज़ोर पड़ गई। वस्तुतः साहित्य मूक द्रष्टा बनकर रह गया है, क्योंकि वह असत्य और यथार्थ को उकेरने के अलावे कुछ भी नहीं कर सकता। दूसरी बात यह कि जिस लोकतंत्र में हम रह रहे हैं उसमें आज का साहित्यकार भी पैरवी, रिश्वत, राजनीतिक कलाबाज़ी के समक्ष मूकदर्शक अथवा हाथ जोड़े खड़ा रहने के लिए मजबूर है। प्रेमचंद तथा रेणु जैसे महान साहित्यकार अँग्रेज़ी शासन के समक्ष झुके नहीं और अन्याय का सामना करते हुए अपनी धारदार क़लम चलाते रहे। आज के साहित्यकारों में वह दम कहाँ? वे सभा-संगोष्ठियों से सामाजिक बुराइयों को मिटाने का उद्घोष तो करते हैं, पर शीघ्र ही स्वयं शराबी, शरारती तथा क्षीण विचारवाले के हाथ पकड़ उसी के रास्ते चलते दिखाई देते हैं। यही कारण है कि आज क़लम कमज़ोर हो चुकी है। कमज़ोर इसलिए भी कि हम अपने संकल्प पर अड़िग होना नहीं चाहते। दूसरी ओर सत्ता पर बैठे लोग इन साहित्यकारों को भी प्रलोभन देकर उनमें फूट डालने का प्रयास करते हैं। इसलिए उनके विचार भी कुंठा के शिकार हैं जिसे मैं इन पंक्तियों में अभिव्यक्त करना चाहता हूँ -

मंज़िल मेरी भी है
पर मैं जाकर भटक गया हूँ
सत्य की इस लड़ाई में मानो
मैं स्वयं मृगतृष्णा में अटक गया हूँ।
कुरीतियाँ लिख-लिख प्रसन्न होता मैं
विद्वता की आड़ में चापलूस बनता मैं
अब बंद करता हूँ लेखनी अपनी
क्योंकि
मंज़िल आए न आए, कारवाँ चलता रहेगा।

संपर्क : छात्र, एम॰ए॰, एस॰
264 ई॰, स्कूल ब्लॉक, शकरपुर, दिल्ली

राष्ट्र कवि दिनकर

जो आग के अक्षर लिखते थे

○ विमल राजस्थानी

'दिनकर' जी से मेरा परिचय प्रथत-प्रथम नरकटियागंज में हुए चंपारण जिला हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन में हुआ। इसके सभापति संभवत: कीर्तिशेष विपिन बिहारी वर्मा बार-एट-लॉ के अनुज स्व॰ भगवती बाबू थे। अधिवेशन के दूसरे दिन 'दिनकर' जी की अध्यक्षता में कवि सम्मेलन हुआ था, जिसमें मेरे काव्य-पाठ से प्रसन्न होकर 'दिनकर' जी ने मुझे ढेर सारा साधुवाद दिया और संपर्क बनाए रखने का परामर्श भी। मैंने उनकी 'हिमालय' तथा 'हुंकार' पुस्तक मनोयोग से पढ़ रखी थी और उनके ओजस्वी काव्य से बहुत प्रभावित था, किंतु वे व्यक्तित्व में भी वैसे ही निकले। लंबा क़द, गौरवर्ण, वस्त्र-विनायास झकाझक, आनन ओज से भरा-भरा तथा वाणी सिंहनाद करती-सी। नेपाली के प्रकृति-चित्रण की बारीकियों ने आकर्षित किया, तो 'दिनकर' की तेजस्विता ने अभिभूत किया। दोनों मेरी हृदय-भूमि पर यों विराजे मानो धरती और आकाश आलिंगनबद्ध हो गये हों। कवि सम्मेलनों के निमंत्रण आते रहते और मैं 'दिनकर' जी की अध्यक्षता में होते उन कवि-सम्मेलनों में दोनों हाथों यश बटोरता रहा। उन दिनों 'झांझा' (काव्य-संकलन) के गीत ही मेरी विशेष पूँजी थी। मेरे राष्ट्र-प्रेम के गीत और कविताएँ 'दिनकर' जी को बहुत भातीं और तक़रीबन बिहार के कोने-कोने में जाकर उनके साथ काव्य-पाठ का सुअवसर पाता चला गया। सब-रजिस्ट्रार के पद से उछलकर वे बिहार सरकार के प्रचार विभाग के उप निदेशक के पद पर आसीन हुए और द्वितीय विश्व-युद्ध की विभिषिका में 'हिटलर' का तांडव-नृत्य नृशंस गैस-चैम्बरों और धुँआधार बमबारी के विस्फोटों से धरा को प्रकंपित करने लगा, तो अँग्रेज़ी सरकार की ओर से, अँग्रेज़ लेखक की ओर से फ़ौज में भारतीय जवानों की भर्त्ती का अभियान शुरू हो गया। 'दिनकर' जी को कुछ ऐसे गीतों की ज़रूरत पड़ी जिन्हें सुनकर नौजवानों में उबाल आ सके और वे तीव्र गति से भर्ती होने की होड़ लगा दें इन गीतों के लिए मुझे चुना और एक गीत के लिए पचास रुपये रायल्टी देकर मुझसे पच्चीस-तीस गीत लिखवाए तथा उन्हें रिकार्ड कर गाँव-गाँव बजाया गया। गीत विधा बहुत ही कठिन है। कोई बहुत उच्च कोटि का कवि हो सकता है परंतु सफल गीतकार होना सबके बस की बात नहीं होती। गीत अर्थात् साज़-बाज़ पर गाया जा सके। मुझे यह विधा सिद्ध है फलत: मैं आकाशवाणी का सफल गीतकार बना। अँग्रेज़ सरकार उनके इस कार्य से अतिशय प्रसन्न हुई और उनकी राष्ट्र-भक्ति

परक कविताओं को नज़र-अंदाज़ करते हुए उन्हें उक्त पद पर बरक़रार रखा। मेरी 'आग' (झांझा) शीर्षक कविता उन दिनों बहुत प्रसिद्ध हुई। एक बार किसी कार्य के सिलसिले में तत्कालीन पुलिस-इंस्पेक्टर से जब मैं अपने साथी स्व॰ लल्लन के साथ मिलने गया तो मेरा परिचय पाकर जब उन्हेंने मेरी 'आग' शीर्षक कविता अर्थ से इति तक मुँह जबानी सुना दी, तो मैं आश्चर्यचकित रह गया था। यों मेरे अंतर में पराधीनता के देश की जो ज्वाला उबल रही थी उसके कारण ही मेरा नाम पुलिस-रिकार्ड में दर्ज रहा हो। मेरा कोई अनिष्ट नहीं हुआ। शायद यह मेरे उन गीतों के कारण ही हुआ हो- जिन्हें 'दिनकर' जी की फ़र्माइश पर मैंने बिहार सरकार को दिए थे। कारण जो भी हो- सरकार के कोपभाजन न तो 'दिनकर' जी ही बने और न मैं ही। दोनों बेदाग़ बचे रहे। यों 'दिनकर' जी के मैं बहुत सन्निकट आता चला गया। यद्यपि वे मुझसे नेपाली की भाँति तक़रीबन दस वर्ष उम्र में बड़े थे, किंतु पारस्परिक व्यवहार में, हास-परिहास में हम समवयस्कों जैसा ही थे। अंतरंगता के कारण बहुत खुले-खुले। नेपाली जी बेतिया बहुत बाद में आए। उन दिनों पूरे बिहार का साहित्य-जगत 'दिनकर' की हुंकार पर मुग्ध और निछावर। गुलामी के दीवाने जो थे। गाँधी जी के नेतृत्व में और भगत सिंह प्रभृति द्वारा किये जा रहे बम-विस्फोटों से भारतीय जनता अतिशय उद्वेलित और बिफरी थी। 'पीपल के पत्ते' 'गोल-गोल' तथा 'मेरे आँगन की हरी घास' के स्थान पर प्रबुद्ध वर्ग नेपाली जी की 'भाई-बहन' कविता को ही पसंद कर उसमें अपनी अग्रता के बीज ढूँढ़ने का अभ्यस्त था। एक से बढ़कर एक राष्ट्र-प्रेम की कविताएँ 'दिनकर' जी की गज्र-लेखनी नि:सृत करती जा रही थी और नतीजतन 'दिनकर' युवकों के कंठ हार बन गए थे। कवि-सम्मेलनों के समस्त मंच 'दिनकर' के विजय ध्वजारोहण के प्रतीक बन गए थे। नेपाली जी का कहीं अता-पता नहीं था। हाँ, पाठ्य-पुस्तकों में उनकी रचनाएँ ज़रूर पढ़ाई जा रहीं थीं। वे उन दिनों शायद बिहार आए भी नहीं थे। परंतु 'योगी' से जुड़ने के बाद भी कवि-सम्मेलन में नेपाली जी कहीं नज़र नहीं आए-'दिनकर' जी ही चमकते-दमकते रहे। एक बार 'मशरक' में सारण जिला हिंदी-साहित्य-सम्मेलन का अधिवेशन था। काशी से काशी नगरी प्रचारनी सभा से निकले हिंदी के संपादक चंद्रबली पाण्डेय उद्घाटन करने आए थे। 'दिनकर' जी की टीम में हम चार साहित्य के सिपाही सदैव उपस्थित रहे। एक मैं, दूसरा समस्तीपुर का पोद्दार रामावतार 'अरुण' तीसरा कपरा (तिकोनिया) का कंटोया और चौथा मुज़फ़्फ़रपुर का श्यामानंद किशोर, जो बाद में पूरा का पूरा कम्यूनिस्ट हो गया, हम सब में कम उम्र का था। इन चारों में आग लगाने वाला केवल मैं ही, शेष तीनों 'शामिलबाजे' की

तरह। वीर रस। एक यह भी कारण विशेष रहा कि मैं 'दिनकर' जी के सर्वाधिक निकट। तो बात चल रही थी 'मशरक' अधिवेशन की। पाण्डेय जी, 'दिनकर' जी, द्विज जी, सुहाद जी इत्यादि के साथ-साथ हम चारों भी किसी विद्यालय भवन में ही ठहरे थे। मैंने साश्चर्य देखा कि चंद्रवसी पाण्डेय जी मोटे खद्दर का धोती-कुर्त्ता पहने थे, दाढ़ी और सिर के बाल बढ़े हुए थे, किंतु पाँवों में जूते या चप्पल नदारद थे। अधिवेशन स्थल तक सभी को पाँव-पैदल ही जाना था। मैं और किशोर लकदक-शुभ्र-श्र्वेत बेशक़ीमती वस्त्रों में सजे-धजे। सभी रवाना हुए तो मैं किशोर से, चुपके से, कहा कि शॉर्टकट रास्ते से चल निकलो अन्यथा उद्घाटक महोदय के नंगे पाँवों की चरण-रज से मंच की दूध-धुली जाज़िम धूल-धूसरित होकर हमारे बैठने लायक़ नहीं रहेगा। चूंकि उद्घाटनकर्त्ता उम्र में सब से बड़े भी हैं, सब से पहले वही मंच पर पधारेंगे। मेरी यह युक्ति काम आई और छोटे रास्ते से हम तीनों सर्वप्रथम मंच पर जा लपके। बाद में जब किशोर ने 'दिनकर' जी से यह बात कही, तो हँसते-हँसते लोट-पोट हो गए और मेरी पीठ थपथपाने के बहाने तीन-चार वज्र-मुष्टिकाएँ रसीद कर दीं। मैं चेन स्मोकर था। धूम्रपान के आदी तो 'दिनकर' जी भी थे, किंतु बमुश्किल चौबीस घंटों में दस-पंद्रह सिगरेटें ही फूकंते थे। वह भी तब जब मैं उनके साथ रहता था। कारण मैं विलायती ब्लैक एण्ड वाइट का टिन साथ रखता था और वह ब्राण्ड उन्हें बहुत पसंद था। अन्यथा वे धूम्रपान कम ही करते थे। पान-वान नहीं खाते थे। एक बार 'झांझा' की सरकारी आपूर्ति के सिलसिले में उन्हेंने मुझे गोरख बाबू के पास सचिवालय भेजे, तो मैंने देखा कि सरकार के इतने बड़े पद पर रह कर भी गोरख बाबू 'तम्बाकू' फाँकते थे और भोजपुरी भाषा में ही बातें करते थे। पर 'दिनकर' जी में यह लत भी नहीं थी। हाँ, जाड़े के दिनों में, स्नान के पूर्व, सरसों के तेल की, पूरे बदन में मालिश खुद करते थे और मुझे तब बहुत अच्छा लगता जब वे सरसों तेल की बूँदें पोरों पर चुपड़ कर नासिका से उन्हें सुड़कते। मैं हँसता तो घुड़ककर डाँट पिला दिया करते। मेरे लगातार सिगरेट पीने पर वे नाराज़गी प्रकट करते और पीठ पर धौल भी जमाते। ऐसा उनका प्यार उनसे कराता रहता। 'मशरक' से जब हम चलते, तो सेकैण्ड क्लास के रेल के डिब्बे में हम तीन व्यक्ति ही सवार हुए। शेष तीसरे दर्जे के सहयात्री बने। 'दिनकर' जी, द्विज जी और मैं। सुबह के लगभग पाँच बजे थे। 'दिनकर' जी और मैं एक ही बर्थ पर और द्विज जी सामने की बर्थ पर। मैं प्रात: कलीन वायु का आनंद ले रहा था और ओस से धुली पेड़-पौधों की हरीतिमा को मुग्ध मन निहारने में लगा था कि अचानक 'दिनकर' जी ने मेरा हाथ थाम कर मेरी दाहिनी हथेली पर उगी रेखाएँ बाँछनी शुरू कर दीं। कुछ क्षणों तक रेखाओं का अध्ययन करने के बाद द्विज जी से बोले कि मेरी आयु चालीस वर्षों के आस-पास है और आत्महत्या करके शरीर का त्याग करूँगा। द्विज जी यह सुनकर आहत होते दिखे। किंतु 'दिनकर' जी के इस कथन की मुझ पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई और मैं स्वाभाविक ही रहा। 'दिनकर' जी एक हस्त-रेखा-विशेषज्ञ भी थे- यह मैंने उसी दिन जाना। छपरा जंकशन से हमें गाड़ियाँ बदलनी थीं। अलग होते समय द्विज जी की आँखें डबडबा आईं और वे मेरी पीठ पर अपना वरद हस्त फेरते हुए, जल्दी से, मुँह फेर कर अपनी ट्रेन के लिए चल पड़े। 'दिनकर' जी ने भी मुझे भावपूर्ण विदाई दी और कहा कि मैं जल्दी ही पटना आऊँगा और उनके साथ कुछ दिन गुज़ारूँगा।

उनके इसी आह्वान पर मैं एक बार पटना गया। 'दिनकर' जी ने पटना-प्रवास में कई निवास बदले। कभी कहीं तो कभी कहीं। मीठापुर स्थित बाबू कन्नू लाल रोड के एक मकान में वे तब थे। उनके निवास के सामने ही श्रीबाबू के मुख्यमंत्री काल के शिक्षा मंत्री आचार्य बद्री नाथ वर्मा रहते थे। 'दिनकर' जी के साथ रामवृक्ष बेनीपुरी जी भी वहीं ठहरे हुए थे। 'दिनकर' जी की आत्मीयता का एक अभूतपूर्व उल्लेखनीय उदाहरण मैं आप को बताऊँ। हुआ यह कि उन दिनों बिहार सरकार ने 'कंट्रोल' का शिकंजा कस रखा था। कपड़ा परमिट पर मिलता था। मैं धोती-कुर्ते में ही रहता था। आज की तरह पश्चिमी लिबास में नहीं। सर्वाधिक क़ीमती धोती और कुर्ता मेरी पोशाक थी। सुबह पहनी तो शाम में दूसरा सेट धारण किया। टीनोपाल मुंबई से मेरे मित्र स्व॰ ब्रज लाल गोइंका भेज देते। कपड़े रहते बगुले की पंख की तरह दूध-धुले। सभी की आँखें उनपर कुछ देर ज़रूर टिकी दीखतीं। संयोगवश मुझे अड़तालीस इंच की बेशक़ीमती धोती धुली नहीं हो सकी, तो मैंने बावन इंच की 'परमसुख' धोतियों का जुगाड़ कर लिया। एक दिन स्नानोपरांत, जब धोती पहन रहा था, तो लंबा अर्ज होने के कारण छाती तक उसे लाकर गोलिया रहा था कि निकट ही नाश्ता कर दाँत खोदते 'दिनकर' जी की नज़र उसपर पड़ गई और वे झटके से पसरी धोती को अपनी ओर खींचते हुए बोले कि मैं इतने लंबे अर्ज की धोती क्यों पहन रहा हूँ जब कि इसे उन्हें पहनना चाहिए। आप से सच कह दूँ कि नियमत: यदि मैं अंडरवीयर नहीं पहने होता तो पूरा नंग-धड़ंग हो गया रहता। पर अधोवस्त्र ने मेरी लाज रख ली। मैंने हँसते हुए वह धोती सौंप कर अपने लिए दूसरी निकाल ली। बेनीपुरी जी गोल तकिए के सहारे आधे लेट कर कुछ लिखने में मशगूल थे अत: वे आत्मीयता के इन सुखद-गुदगुदाते क्षणों का आनंद उठाने से वंचित रह गए। दोनों अपनी-अपनी विधाओं के दिग्गज और दोनों ही जाति विशेष के। पटना के साहित्य प्रोधा स्व॰ कविनाथ पाण्डेय भी उसी श्रेणी के। मुख्यमंत्री भी उसी के। चौतरफा उसी वर्ग का वर्चस्व। 'उदयाचल' के बैनर तले 'दिनकर' जी की पुस्तकें निकलतीं तो प्रांत भर के डिस्ट्रिक बोर्ड अपनी पुस्तकों की सरकारी ख़रीद में उनकी पुस्तकों को ठसम-ठस्स कर लेते। उनके संस्करण पाठक-वर्ग के कारण नहीं, वरन् सरकारी आपूर्ति के कारण होते रहते। एक बार पटना में मैंने निजी उपयोग के लिए एक छाता ख़रीदा। बुरी तरह ठग लिया गया। सिन्हा लाइब्रेरी में कवि-सम्मेलन था। 'दिनकर' जी को ही अध्यक्षता करनी थी। मैं 'दिनकर' जी के साथ सिन्हा लाइब्रेरी के लिए निकला तो रिक्सा एक भी नहीं। अत: पाँव-पैदल ही चले कि रिमझिम बरसात शुरू हो गई। 'दिनकर' जी के पास उनका अपना छाता था। मेरे पास मेरा था। मैं उन दिनों चुस्त पाजामा और शेरवानी पहन कर कवि-सम्मेलन में जाता था। अब देखिए कि उस छाते का कपड़ा कच्चे काले रंग का निकला और बरसाती पानी में धुल कर उसने मेरी शेरवानी को काले धब्बों से भर दिया। डेरे पर लौटना इसलिए निहायत ज़रूरी हो गया था। उधर सम्मेलन के वक़्त की पाबंदी सिर पर सवार। 'दिनकर' जी असमंजस की स्थिति में पड़ गए। उन्हें मेरी इस दुर्दशा पर

हँसी भी आई और रोना भी। वे एक दुकान में बैठ गए और मुझसे जल्दी ही कपड़े बदल कर आने को कहा। मैं भागा-भागा डेरे पर लौटा और कपड़े बदल कर आया। तब तक बारिश भी थम चुकी थी। इस मन्हूस छाते से पिंड छूटा। तक़रीबन पैंतालीस मिनट देर से सम्मेलन स्थल पर पहुँचे। वहाँ आयोजक चिंतित और उदास दिखे। पर देर आया दुरूस्त आया की बात ने उन्हें शीघ्र ही स्वाभाविक अवस्था में ला दिया। कवि-सम्मेलन की समाप्ति पर हम रिक्शा से निवास पर लौटे, तो सब से पहले 'दिनकर' जी ने मेरे छाते की कपाल-क्रिया कर दी। उसे तोड़-मरोड़ कर कूड़े के ढेर पर फेंक कर ही दम लिया। उनकी क्रोधी मुद्रा से पहली बार मैं परिचित हुआ। उनके संयम से भी जान-पहचान हुई।

सर गणेश दत्त द्वारा पटना युनिवर्सिटी को दान में दिए गंगा किनारे के एक मकान में तब 'दिनकर' जी रहा करते थे। रेडक्रॉस की ओर से आयोजित एक कवि-सम्मेलन में, जो पटना हार्डिग पार्क में संपन्न हुआ था मैं उनके ही साथ ठहरा हुआ था। कुमार गंगानंद सिंह उस कवि-सम्मेलन के अध्यक्ष थे। नेपाली जी भी आए हुए थे और हमारे साथ ही टिके थे। कवि-सम्मेलन में जब नेपाली जी काव्य-पाठ कर रहे थे तो श्रोता, सदा की भाँति मंत्र-मुग्ध थे और कुमार साहब, जो कुर्सी पर पदासीन थे, अपने पाँवों से ताल देते दिखे। ऐसा था कमाल नेपाली जी का काव्य-पाठ। देर रात जब हम लौटे तो, कमरे में तीन बिछावन लगे थे। 'दिनकर' जी नेपाली जी का और एक मेरा। मुझे झट-पट सो जाने का आदेश दे कर दोनों महाकवि गप्पें मारने में मशगूल हो गए। ढेर सारी इधर-उधर की बातें कर वे दोनों काम-शास्त्र के बखिए उधेड़ने लगे, तो मेरी ज़ोरों से आती नींद रफ़ूचक्कर हो गई। अब स्थिति गंभीर और अधीर कि मेरे कान चौकस-चौकन्ने। जब संभोग-कला की चर्चा ने अपने पंख पसारे तो एक प्रसंग पर मुझे बेसाख़्ता हँसी आ गई। कमरे में एकाएक सन्नाटा पसर गया और दोनों गंभीर मुद्रा में आ गए। 'दिनकर' जी उठे और मुझे चार-पाँच धौल लगाते हुए गुर्राए- ''कमबख़्त कितना तेज़ है। नयन मुदें हैं और कान के कपाट पूरे के पूरे खुले हैं। अपने से श्रेष्ठों के वाणी-विलास का रसास्वादन कर पुलकित-रोमांचित हो रहे हैं जनाब! मारूँ दो-चार घूंसे?'' मैं हँसते-हँसते हाथ जोड़ दिए तब जाकर उनका सात्विक कोप शांत हुआ और दोनों चुपचाप अपने-अपने बिछावन से जा लगे। मैं मन ही मन सोचता-विचारता रहा कि मनुष्य भी कैसा विचित्र प्राणी है। ऊपर से परम शासीन और भीतर-भीतर काम-कला प्रवीण। अपनी-अपनी धोतियों में सब नंगे। चाहे राम हों, कृष्ण हों, गौतम, महावीर, गाँधी-नेहरू या टैगोर, सभी काम-क्रीड़ा के हाथों के खिलौने। हाँ, नग्न सत्य मुझे कभी नहीं आया। सदैव में अर्ध-नग्न सत्य का पक्षपाती रहा। आवरण ज़रूरी है। सामने नंगधड़ंग स्त्री खड़ी हो जाए तो मन वितृष्णा से भर जाता है। वहीं यदि वह आवरण में हुई तो उसे बार-बार निहारने की उत्कंठा पैदा होती है। कल्पना कीजिए कि एक दिन संसार के पूरे के पूरे वस्त्र कहीं ग़ायब हो जाएँ तो दुनिया का स्वरूप क्या होगा? छि: छि:। विचार मात्र से उबकाई आती है। परंतु जब 'हंस' में छप रही आत्म-स्वीकृतियों से गुज़रता हूँ तो लगता है कि हम फिर वहीं के लिए वापस मुड़कर चल पड़े हैं जहाँ आदिम स्त्री और आदिम पुरुष ने अपनी यात्रा प्रारंभ की थी और 'जौहर' की आग तक आ पहुँचे थे। जहाँ संदेह तो दूर प्रतिबिंब भी घातक होकर अग्नि-आलिंगन के लिए कसमसा उठा था।

'दिनकर' जी सरकारी सेवा में ही थे कि पड़ोस के नगर मोतीहारी के सुभाष-पार्क में एक कवि-सम्मेलन आयोजित था। 'दिनकर' जी अध्यक्षता कर रहे थे। रामनगर के स्व॰ कामेश्वर 'विद्रोही' ऊँची कद्-काठी के थे। गौरवर्ण से सजीले जवान। मूछें बड़ी-बड़ी और ऐंठी हुई। 'दिनकर' जी को भा गए सो संचालन की बाग-डोर उनके हाथों में सोंप दी। उन दिनों हैदराबाद में रज़ाकारों का नृशंस अत्याचार अपनी चरम सीमा पर था। हिंदुओं का क़त्लेआम किया जा रहा था। संयोग से उसी समय मूसलाधार वृष्टि के कारण आधी वाराणसी जलमग्न हो गई। माधो दास के दो धरहों में से एक धराशायी हो गया। तभी मैं एक लंबी कविता लिखी। 'तुम इसे बाढ़ का नाम दो, यह उमड़ी गंगा की पीड़ा'। कविता काशी से प्रकाशित 'समाज' साप्ताहिक में छपी। इस कविता में रज़ाकारों द्वारा निर्दोष हिंदुओं का ख़ून बहाकर रक्त-रंजित तलवारों को गंगा जल से खंगाल लेने का आक्रोश भरा ज़िक्र बहुत मर्मवेधी शब्दों में व्यक्त था। जब मैंने इस कविता का पाठ किया तो, श्रोताओं ने बहुत शाबाशी दी। ख़ूब तालियाँ बजीं। 'दिनकर' जी चूँकि सरकारी मुलाज़िम थे उन्हें भय हुआ कि इस सेंटिमेंटल कविता की रिपोटिंग सभा- स्थल से चिपके बैठा कोई सी॰आई॰डी॰ का आदमी सरकार में नहीं भेज दे। उनकी अध्यक्षता में पढ़ी गई यह विद्रोही-स्वरोंवाली कविता से कहीं उनकी नौकरी पर आँच न आ जाए। इसी भय से ग्रसित होकर राष्ट्र-भक्त कविता जिसकी वाणी से गुलामी के प्रति अंगारों की झड़ी लगी थी, अपने अध्यक्षीय आसन से तत्काल उठा और श्रोताओं को संबोधित करते हुए बोल पड़ा कि चूंकि मेरा कवि युवा है और उसकी धमनियों में उष्ण रक्त की धारा प्रवाहित है- मैंने यह आंग उगली है जिसकी आँच उपस्थित श्रोता सभा-स्थल पर ही छोड़ जाएँ, अपने घरों तक नहीं ले जाएँ इत्यादि-इत्यादि। मैं आश्चर्यचकित और अवाक। स्वयं को अपमानित महसूस करते हुए मैंने वहीं क़सम खा ली कि भविष्य में अब किसी कवि-सम्मेलन में शरीक नहीं होऊँगा। मैं कवि-सम्मेलन का त्याग कर, घर लौट आया। तब से आजतक भरसक मैं इस सौगंध का निर्वाह करता चला आ रहा हूँ। कवि-गोष्ठियों तक ही स्वयं को सीमित किए हुए हूँ। अपने 'नेपाली निनीशीथ' के बैनर तले, नेपाली परिवार की आर्थिक सहायता हेतु जो विराट कवि-सम्मेलन आयोजित किया उसके मंच पर भी सभापति स्व॰ भाई ब्रजकिशोर 'नारायण' के बार-बार पुकारने पर भी मैं मंच पर नहीं चढ़ा। उक्त कवि-सम्मेलन से हज़ारों की आय की यारों ने जो ऐसी-तैसी की उसका विषद वर्णन मैं नेपाली-संबंधी अपने संस्मरण में कर चूका हूँ। उसे बार-बार दुहराना क्या? 'दिनकर' जी से संपर्क टूट गया। मन पीड़ा और आक्रोश से बोझिल बना रहा कि तभी 'दिनकर' जी राज्यसभा में मनोनयन पाकर दिल्ली प्रवास पर चले गए। बिहार छूट गया। राज्यसभा में राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त और बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' भी थे। फ़ुर्सत के समय सभी गुप्त जी के बंगले पर जमा होते। गुप्त जी ने मेरे 'झंझा' पर अपनी प्रशंसा मुझे भेजी थी। 'बच्चन' और रामकुमार वर्मा ने भी। छपास की बीमारी मुझे ले डूबी और 'सागर' साप्ताहिक के सहयोगी संपादक स्व॰ श्री कपिलेश्वर प्रसाद 'कपिल' उन मूल प्रतियों को मुज़फ़्फ़रपुर से निकलने वाले किसी पत्र में प्रकाशित करने के उद्देश्य से ले गए तो वे फिर मुझे प्राप्त नहीं

हो सके। हाँ, गुप्त जी की यह पंक्ति मुझे आज तक स्मरण है- 'बेटा! आपने कितना सुंदर लिखा है- 'एक नहीं लाखों प्रताप को देनी ही होगी क़ुर्बानी'। काव्य की इस सुरसरी के लिए हार्दिक बधाई, इत्यादि। संयोग से उन्हीं दिनों मुझे व्यवसाय के सिलसिले में दिल्ली जाना पड़ा। मैं मैथिली शरण जी से मिलने का लोभ संवरण नहीं कर सका। प्रथम साक्षात्कार भेंट ही में मुझे चिरगाँव से आए लड्डुओं का सुमधुर स्वाद चखने को प्राप्त हुआ और लगा कि महाकवि ने अपने स्नेह-सिंधु में आकंठ निमग्न कर दिया है। बाद में भी जब-जब दिल्ली जाना हुआ, गुप्त जी के लड्डुओं का प्रसाद सुलभ होता रहा। बहुत दिनों बाद उन्होंने अपने सचिंत से 'जयभारत' की एक प्रति डाक से भिजवायी।

'दिनकर' जी के आवास पर जाने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता था कारण मेरा मोतीहारीवाला आक्रोश अभी अपनी उबाल पर ही था। मैं जानता था कि 'दिनकर' जी वहाँ संध्या काल में ही आते थे। अत: मैं प्रात: बेला ही गुप्त जी के दर्शनों का लाभ उठा लेता था। एक बार गुप्त जी ने मुझसे कहा कि 'दिनकर' जी कह रहे थे कि 'विमल' का कवि मर गया है। मैंने मुस्कराकर बात को आगे बढ़ने नहीं दिया। संयोग ऐसा हुआ कि साप्ताहिक 'हिंदुस्तान' के किसी अंक में बाँके बिहारी भटनागर का एक संपादकीय कवि-सम्मेलन पर प्रकाशित हुआ जिसमें उन्होंने अपने विचार तो रखे ही 'दिनकर' जी के द्वारा कही गई बात का भी अक्षरश: उल्लेख किया। 'दिनकर' जी ने क्षुब्ध होकर कहा कि "अब तो कवि कहलाने में भी शर्म महसूस होती है। जी में आता है अपना नाम कोरे काग़ज़ पर लिखूँ और उस पर दस जूते लगाऊँ।" पढ़कर बेइंतहा मेरी हँसी फूट पड़ी और एक चुहल मुझे सूझी। मैंने संपादकीय के उस अंश की कतरन ली। उसे अपने लेटरहेड के बीचोबीच चिपकाया। ऊपर लिखा-आदरणीय! प्रणाम। और उस कतरन के नीचे आपका लिखकर अपने हस्ताक्षर कर दिए। चिट्ठी पोस्ट कर मैं आश्वस्त हुआ और क्षोभ को नौ-दो-ग्यारह होने दिया। बात आई-गई हुई। मेरी इस चुहल की उन पर क्या प्रतिक्रिया हुई उसकी जानकारी मुझे बहुत बाद में हुई। हुआ यह कि जब वे भागलपुर विश्वविद्यालय के उप कुलपति पद पर आए , तो उसी समय आकाशवाणी, पटना से काव्य-पाठ का निमंत्रण मिला। वहीं मुझे पता चला कि 'दिनकर' जी पटना आए हुए हैं। मैंने सोचा कि उनसे मिलकर अपनी चुहल की प्रतिक्रिया जानने का यही सुअवसर है। भागलपुर जाना तो होगा नहीं। अस्तु होटल राजस्थान से उनसे दूरभाष पर बातें करने की चेष्टा की, तो उनका पारिवारिक सलाहकार (नौकर) ने बताया कि वे आर्य कुमार रोड स्थित अपने आवास पर नहीं हैं, नगर में ही कहीं निकले हुए हैं। मैंने उससे कहा कि जब वे वापस आएँ , तो वह उन्हें मेरा नाम बतलाकर कह दे कि मैं उनसे मिलने उनके आवास पर आऊँगा। दूसरे दिन तैयार होकर आठ-नौ बजे जब मैं उनके आवास पर पहुँचा, तो देखा कि दो-तीन व्यक्ति बाहर बरामदे में प्रतीक्षा में बैठे हैं। शायन-कक्ष सामने से दिख रहा था। वे किसी वस्तुकला-विशेषज्ञ से विश्वविद्यालय के किसी भवन निर्माण के संबंध में बातें कर रहे थे। पहलेवाली स्थिति में तो मैं था नहीं कि झपट कर धड़धड़ाते हुए अंदर दाख़िल हो लूँ। अस्तु, बाहर ही एक खाली कुर्सी पर बैठकर प्रतीक्षा करने वालों की जमायत में जा बैठा। हाँ, एक स्लिप ज़रूर अंदर भेजवा दी। मुझे चालीस-पैंतालीस मिनट तक प्रतीक्षा में बैठे रहना पड़ा, पर उन्होंने मुझे अंदर नहीं बुलाया। अंदर की जा रही बातें जब समाप्त हुई तो बाहर निकले। मैंने प्रणाम किया तो मात्र इतना कहा कि 'विश' करने आए हो? बाहर निकल गए। उनकी इस बेरुख़ी ने मेरे कोमल मन को बहुत ठेस पहुँचाई और उनका असली जातीय स्वरूप स्पष्ट पूर्णत: नग्न होकर आँखों के सामने से गुज़र गया। मैं इस अवेहलना और उपेक्षा से अतिशय मार्महत होकर अपने होटल लौट आया।

जीवन बीमा के काम के सिलसिले में मैं अक्सर अतिप्रात: तैयार होकर अपने विकास पदाधिकारी स्व० रमाकांत उपाध्याय के निवास पर जाया करता था। उनसे यह बात तय थी कि मैं जब उनके पास जाऊँ तो वे जब तक ख़ुद तैयार हों- तब तक एक नोट बुक अपनी मेज़ पर ख़ास तौर से मेरे उपयोग के लिए रख दें ताकि मैं उसे ख़ाली समय का सदुपयोग करूँ। कुछ नया लिखकर रख सकूँ। पटना से भावों का ज्वार भर लाया था। सुबह जाते ही एक कविता लिखी, जिसकी पंक्तियाँ इस प्रकार हैं;

"क्षमा शोभती उस भुजंग को"
मित्रवर राष्ट्रकवि 'दिनकर' को उत्तर

क्षमा करेगा वह भुजंग क्यों
यदि उसका फण क्षत हो
भले माँगता भीख प्राण की
मानव विनत, प्रणत हो
डँसना उसका बन जाता है
धर्म, ध्येय जीवन का
जलता है प्रतिशोध-ज्वाल में
ज्यों वह जीवन-व्रत हो
मिल सकती है क्षमा, बदन से
यदि स्पर्श तनिक हो
यदि असावधानी मनुष्य से
भ्रमदश हुई क्षणिक हो
जान-बूझकर जो फणिधर
के फण पर पग धरते हैं
निश्चय वे विषदंत झेलते
श्वान-मौत मरते हैं

यों अपने मन की भँडास निकालकर छुट्टी पाई। इसके बाद कभी 'दिनकर' जी से मेरा कोई संपर्क नहीं हुआ। न मैंने कभी चेष्टा की और न उन्होंने। वे करते भी कैसे? इस जाति विशेष के संबंध में मित्रों और परिचितों से असंख्य जीवनानुभव सुन रखे थे। पड़ोसी से भी बहुत कुछ जाना-समझा था। साठ-सत्तर सालों तक एक एक परिवार से परम आत्मीय संबंध भी रहे थे। उसी परिवार के एक सदस्य से बुरी तरह आहत भी हुआ और अब तो इस पूरे परिवार ने ही ऐसा रूप धारण कर लिया है जैसे हमें कभी की जान-पहचान तक नहीं थी। 'दिनकर' जी का एक काव्यांश बहुत मशहूर है। लोग-बाग उसे दुहराते रहे हैं। 'क्षमा चाहिए उस भुजंग को जिसके पास गरल है ...'
मैंने उसे सही नहीं माना और 'दिनकर' को उत्तर शीर्षक अपनी कविता में लिखा कि

महाकवि 'दिनकर' के प्रति

करते जो 'साधना' बड़े बनते विचार से
रहते हैं वे विगल सदा थोथे प्रचार से
दुख के समय काम आए जो मित्र उन्हें वे
गले लगाते हैं मिलने पर बड़े प्यार से

पद से नहीं बड़ा होता है मनुष्य धरा पर
सही नम्र व्यवहार उसे है बड़ा बनाता
जो जिना ही छिछला होता है इस जगत में
वही पुराने मित्रों से आँख चुराता

वे हैं नहीं महान मनुजता को जो छोड़े
क्रीत-दास वे नहीं कहाते अहंकार के
दंभ नहीं उनके सिर पर रहता सवार है
'बड़े' सदा अनुचर रहते हैं प्रीति-प्यार के

बड़े 'मेथिलीशरण 'गुप्त' थे बड़े 'निराला'
जिनने तिल-तिलकर जल-जलकर दिया उजाला
नाम तुम्हारा 'दिनकर' वाणी भी सशक्त है
किंतु दंभ के राहू ने तुमको ग्रस डाला

संपर्क : लाल बाग़, बेतिया, प० चम्पारण
(दूरभाष सं० 9939232490)

क्यों कैलाश! ऐसी जल्दी क्या थी?

○ सत्यनारायण

सुनो, कैलाश!

वह 10 दिसम्बर 2006 का दिन था। पटना में मौसम कुछ ज़्यादा ही सर्द था। मोबाइल है रिंग टोन में हरकत हुई। उधर से नरेश कात्यायन (लखनऊ) की भर्राई आवाज़- ''कैलाश गौतम नहीं रहे।'' मैं स्तब्ध, जड़वत। अभी मोबाइल हाथ में ही था। फिर रिंग टोन बजा। यह माहेश्वर तिवारी थे, मुरादाबाद से। पूछा, ''सत्यनारायण बोल रहे हो।'' मैंने कहा, ''हाँ''। वह फूटफूटकर रोने लगे। हिचकियों के बीच बमुश्किल इतना ही कह पाए, ''कैलाश हमें छोड़कर चले गए।'' फिर कुछ क्षणों का अंतराल। बोले, ''आज ही दाह संस्कार है। में तो पहुँच भी नहीं पाऊँगा ... तुम ठीक हो ना? अपना ख़्याल रखना।'' मैंने मन ही मन दुहराया, ''ठीक?'' यह ठीक होना क्या होता है? ठीक तो कैलाश भी थे। फिर ऐसा हुआ क्यों?

सुनो! तुम मुझे 'बड़े भाई' कहा करते थे ना? याद है, इसी संबोधन के साथ तुमने 'जोड़ा ताल' की प्रति मुझे भेजी थी। तो बड़े भाई के सामने छोटा भाई क्यों चला गया? बोलो, कैलाश! बोलो? आखिर क्या जल्दी थी जाने की? 'क्यू' छोड़कर जाना ज़रूरी था? वह कैसी काली-काली घटा थी, जिसे देखकर तुम्हारा जी ललचा गया था? वह किस जोड़ा ताल का चुंबकीय बुलावा था कि तुम अचानक 'घर' लौट गए? काली-काली घटा देखकर जी ललचाता है, लौट चलो घर जोड़ा ताल बुलाता है।

अभी कुछ दिनों पहले नरेश कात्यान की पत्रिका में स्व॰ उमाकांत मालवीय पर तुम्हारा संस्मरणात्मक आलेख पढ़ा था- 'बड़े भाई' पर एक छोटे भाई का संस्मरण। और आज मुझे 'बड़े भाई' को त्रासदी है कि 'छोटे भाई' (यानी तुम) पर संस्मरण लिख रहा हूँ।

मेरे भाई, तुम्हें याद हो, न हो। मुझे ठीक याद है। बात बीती सदी के संभवत: अस्सी के दशक की है। तुम बर्नपुर (प॰ बंगाल) के कवि-सम्मेलन में आए थे। वहीं पहली बार तुम्हें देखा था। कसी-कसी कद-काठी, चेहरे पर एक खिचाव। एक परुष, 'मैसकुलिन फ़ीगर' कविनुमा कुछ भी नहीं। उन दिनों 'धर्मयुग' में छपी तुम्हारी कविता 'भाभी की चिट्ठी' की बड़ी धूम थी। पहली बारिश के बाद मिट्टी से सोंधी गंध या फिर गाय के थन से निकला कच्चा दूध की उष्णता जैसी वह रचना मेरे मन-प्राणों में रची-बसी थी। जब तुम्हारी बारी आई तो पता नहीं क्यों तुमने हास्य-व्यंग्य की कोई रचना पढ़ी थी। फिर दूसरी रचना भी इसी मन-मिज़ाज़ की। मैं बैठा-बैठा कुढ़ रहा था। तुम्हें शायद याद न हो। मैं हठवत माइक पर आया और तुमसे 'भाभी की चिट्ठी' सुनाने का अनुरोध किया। तुम्हें मेरा यह हस्तक्षेप कुछ अच्छा नहीं लगा था। तुमने अनिच्छा ज़ाहिर की थी। पर मैं भी कब मानने वाला था। मैंने माइक पर कहा, 'भाई कैलाश गौतम जी आपसे मेरा यह अनुरोध एक कवि का ही नहीं, आपके इस पाठक और प्रशंसक का भी है।' लगे हाथ मैंने कविता की पाँच-सात पंक्तियाँ भी उद्धृत की और कहा कि मुझे विश्वास है कैलाश जी मेरा मान रखेंगे। श्रोताओं ने तालियों से इसका अनुमोदन किया। फिर तुमने कविता का पाठ पूरे मन से किया था। तब मुझे ही नहीं, पूरी उपस्थिति को लगा जैसे पिछवारे का महुआ मह-मह कर रहा है। ('बड़का महुआ फूल रहा घर के पिछवारे जी') और गौरेया कहीं पास ही घोंसला बना रही है। ('गौरेया घोंसला बनाने लगी ओसारे देवर जी') सच, कैलाश, उस रात अपरिचय के बावजूद तुमने सबके सामने मान रखा, इसे कैसे भूल जाऊँ, तुम्हीं बताओ।

वह अपरिचय परिचय में और परिचय प्रगाढ़ता में संभवत: बदलता चला गया। आज जब तुम नहीं हो तब यह एहसास सुई की नोक पर बिंधे कीड़े की तरह छटपटा रहा है। कितना सहज, सरल, तरल संबंध जीते रहे थे तुम। न कोई ग्रंथि, न कोई गांठ, न कोई पेंच। तुमने यों ही नहीं लिखा है, 'हम होते थे / सहज मोड़ से / रसते जहाँ कठिन होते थे।' हमारे संबंधों की नींव पड़ी थी, मुरादाबाद के गोकुलदास पथ पर माहेश्वर तिवारी के मकान में। एक कवि-सम्मेलन के सिलसिले में जाना हुआ था। आयोजन मक्खन मुरादाबादी ने किया था। पटना से गोपी वल्लभ भी साथ आए थे। मेरठ से भारत भूषण और इलाहाबाद से तुम और शायद ग्वालियर से ज़हीर कुरैशी थे। हम सब माहेश्वर के घर एक छोटे कमरे में सिमट गए थे। यात्रा की थकान तो थी। पर लेटने की फ़ुर्सत किसे थी। चौकड़ी जम गई तो जम गई। भारत भूषण की चटपटी टिप्पणियाँ, माहेश्वर की बेसाख़्ता खिलखिलाहट और तुम्हारे छतफाड़ ठहाकों के बीच थकान कब उड़नछू हो गई, पता ही नहीं चला। इस बतरस में पूरी तरह खुल नहीं पाया था। और कैलाश भाई, तुमने यह लक्ष्य कर लिया था। सो मुझे हँसने को बार-बार उकसा रहे थे तुम। लगा जैसे तुम मुझसे कह रहे हो- 'फूल हँसो / पात हँसो / डार हँसो तुम / हँसिए की धारा! बार-बार हँसो तुम।' चाय और नमकीन 'सर्व' करती हुई विशाखा भाभी मुस्करा रही थीं। जिनकी मुस्कराहट कह रही थी- कैलाश जी, (सत्यनारायण) के लिए 'फिकिर नॉट' यानी फिक्र मत करो। और खुल जाएँगे दो-चार मुलाकातों में।

और सच कहूँ कैलाश! कुछ ही मुलाकातों में पन्ना-दर-पन्ना खुलता चला गया और तुम्हारे हाथों में एक खुली किताब बन गया। आकाशवाणी के अपने सेवा-काल में तुमने कई-कई बार मुझे इलाहाबाद बुलाकर गीत-कवियों की पाँत में शामिल किया। यहीं पहली बार मेरा परिचय नईम और बहादुर सिंह भदौरिया जैसे पांक्तेय गीतधर्मी कवियों से हुआ। वह शाम भी याद है जब किसी प्रशासनिक अड़चन के कारण कवि-सम्मेलन आमंत्रित श्रोताओं की उपस्थिति में न हो सका। तब तुमने आकाशवाणी इलाहाबाद, के दूसरे स्टूडियो में ही संपन्न कराया। तुम्हारी जगह कोई और होता तो आयोजन कदाचित स्थगित हो जाता। मैंने हमेशा महसूस किया कि काव्य-पाठ का आयोजन

तुम्हारे लिए मात्र एक आयोजन न होकर एक अनुष्ठान हुआ करता था, जिसे तुम पूरी संलग्नता से संपन्न करते थे। संचालन का सूत्र संभालना तुम्हारे लिए महज़ औपचारिकता नहीं थी, एक सांस्कृतिक कर्म था- उपस्थित श्रोताओं के बीच कविता की चेतना का विस्तार करने का कर्म, कविता की ताक़त का बोध कराने का गहन दायित्व। संचालन तो मैं भी करता रहता हूँ भाई, मगर तुम्हारी बात ही कुछ और थी।

याद आ रही है चेन्नई के अन्ना ऑडोटेरियम की वह काव्य-संध्या। तुम इलाहाबाद से आए थे और मैं अपने मित्र कवियों के साथ पटना से। प्रवेश टिकट पर था और उस हिंदी विरोधी क्षेत्र में भी हॉल पूरा भर गया था। संयोगवश संचालन का ज़िम्मा मुझे दिया गया। तुम्हें आमंत्रित करने के क्रम में मैंने कहा था, "प्रयाग की सांस्कृतिक धरती से आया एक कवि हमारे बीच है, कैलाश गौतम। कैलाश कविता नहीं लिखते, कविता इन्हें लिखती है। कविता इनकी शिराओं में प्रवाहित है, रक्त की तरह, आँखों में दीप्त है आकांक्षा की तरह और प्राणों में सजीव है धड़कन की तरह।" तुम माइक पर आए और शुरू हो गए 'गाँव गया था, गाँव से भागा', 'पप्पू की दुलहन' पाँच-सात दोहे और अंत में एक गीत। श्रोता तो जैसे कविता की बारिश में भींग-भींग रहे थे, विभोर थे और चकित भी। चकित इसलिए कि कैसा है यह कवि जो बेमुरौव्वत होकर व्यंग्य से प्रहार कर सकता है और साथ ही खनकते हुए तलस्पर्शी गीत और गुदगुदाते, चुहल करते दोहे भी लिख सकता है। 'चाँद शरद मा मुँह लगा', 'गाया चिकोटी काट : घंटो सहलाती रही नदी महोवा घट।' जानते हो कैलाश! उस शाम तुम्हारी इन पंक्तियों का एक अलग अर्थ मेरे भीतर कौंधा था :- 'बारिश में घर लौटा कोई दर्पण देख रहा, न्यूटन जैसे पृथ्वी का आकर्षण देख रहा।' बताओं कैलाश! उस शाम अन्ना ऑडोटोरियम में उपस्थित श्रोता क्या न्यूटन नहीं थे और तुम पृथ्वी, जिसका आकर्षण उन्हें अभिभूत कर गया था? लगे हाथ एक और मजे़दार वाकि़या का ज़िक्र कर दूँ। आयोजन में एक कवयित्री भी थीं। उनके ठहरने की व्यवस्था कहीं और थी। कवि-सम्मेलन देर तक चला था। महोदया ने मुझसे कहा, "काफ़ी देर हो गई है। मैं आपके कमरे में ठहर जाऊँ?" याद है ना? तुम पास ही खड़े थे। छूटते ही कहा, "क्या आप इनके कमरे में रात बिताएँगी?" वे झेंपी। फिर तुम मुझसे मुख़ातिब हुए। बोले, "क्या करना है। बात नारी की है। आप मेरे कमरे में आ जाइए।" मैं तुम्हारे कमरे में आ गया। हम देर तक बातें करते रहे। तुमने कवयित्रियों के संदर्भ में कुछ रहस्य खोले। आँखन देखी बताई। दूसरे दिन हम साथ-साथ तिरूपति गए। सुना है, तिरूपति में संकल्प लेने का बड़ा महातम है। लौट कर तुमने अपना संकल्प मुझे बताया, "बड़े भाई, मैंने मंदिर के परिसर में शराब न पीने का संकल्प लिया है।" मैंने मन ही मन तुम्हारे लिए प्रार्थना की। दो-तीन घंटे बाद तुम आए। हाथ में डायरी और उसपर लिखा ताज़ा गीत- 'मन का वृंदावन होना इतना आसान नहीं' फिर पता नहीं क्या सोचकर तुमने मेरी डायरी में अपना यह गीत अपनी हस्तलिपि में दर्ज कर दिया था। सच, वह तुम ही थे जिसने इतनी आसानी से मन को वृंदावन बना लिया था।

एक प्रसंग और । बात छ: सात साल पहले की है। पटना में ख़ुदाबख़्श आरिएंटल लाइब्रेरी ने पहली बार हिंदी कवि-सम्मेलन का आयोजन किया था। आमंत्रित कवियों में थे, रमानाथ अवस्थी, कन्हैयालाल नंदन, रवीन्द्र भ्रमर, नईम, माहेश्वर तिवारी, बुद्धिनाथ मिश्र, तुम और मैं। दोपहर में रवीन्द्र भ्रमर ने अपने एक ताज़ा गीत की चर्चा की 'पेड़ पुरानो हुआ न जाने कब गिर जाए' शाम को हम आयोजन स्थल, भारतीय नृत्यकला मंदिर के प्रेक्षागृह पहुँचे। रवीन्द्र भ्रमर नहीं दिखे। पता चला, वे अचानक अस्वस्थ हो गए। बुद्धिनाथ उन्हें लेकर अस्पताल गए हैं। कवि-सम्मेलन शुरू हो गया। बिहार के तत्कालीन राज्यपाल सुंदर सिंह भंडारी मुख्य अतिथि थे। कोई तीन घंटे बाद लाइब्रेरी के निदेशक, चेगानी साहब आए। धीरे से बोले, "भ्रमर जी का दिल का दौरा पड़ा और उनका निधन हो गया। कवि-सम्मेलन बंद कर दिया गया। तुम्हें सुबह इलाहाबाद पहुँचना था। सो तुम पहले ही रेलवे स्टेशन जा चुके थे। सुबह तुम्हारा फ़ोन आया- "यह क्या हो गया, कैसे हो गया?" तो सुनो कैलाश! आज मैं तुमसे पूछ रहा हूँ, "9 दिसंबर को इलाहाबाद में यह क्या हो गया? कैसे हो गया? उत्तर दोगे ...?"

मेरे भाई आख़िर तुम चले ही गए। सब कुछ छोड़-छाड़कर चले गए। मोह-छोह के सारे बंधन झटककर चले गए। अपने एम०आई०जी० 135, प्रीतम नगर को सूना क्यों किया? आकाशवाणी से तो विदा ले ही चुके थे। हिंदुस्तानी एकादमी को अलविदा कहने की ज़रूरत क्यों आन पड़ी? स्वजन-परिजन, दोस्त- अहबाब किसी का ध्यान नहीं आया तुम्हें? इलाहाबाद से मन भर गया था क्या? यह गुस्ताख़ी क्यों की तुमने? दोस्तों से हम भी गुस्ताख़ी करेंगे एक बार यार सब पैदल चलेंगे, हम जनाजे़ पर सवार।

ख़ैर तुम्हें जाना था, चले गए। लेकिन यह तो बताओ कि अब सूखे ताल में कंडे बीन रही झुनिया की कथा-व्यथा कौन लिखेगा? ('कंडे बनी रही झुनिया देखो, सूखे ताल में') क्या है कोई और जो नदी नहाकर निकली रामधनी की रोहू मछली-सी दुलहिन के पानीदार लावण्य को जस का तस मूर्त कर दे? ('मुँह पर उजली धूप, पीठपर काली बदली है। रामधनी की दुलहिन नदी नहाकर निकली है। रामधनी हँसकर कहता है, रोहू मछली हाँ, अपनी सीधी-साधी 'बड़की भउजी' की खल-खल हँसी को तुम्हारे बिना कौन सजीव कर पाएगा?') ('जब देखो तो बड़की भउजी हँसती रहती है। कभी न करती नखरा तिलला, सादा रहती है। जैसे बहती नाव नदी में वैसे बहती है।') ऊँची-ऊँची कुर्सियों पर जमे ऐसे-वैसे महानुभावों को बेपर्दा कौन कर पाएगा ('यह कैसी अनहोनी मालिक / यह कैसा संयोग / कैसी-कैसी कुर्सी पर हैं। कैसे-कैसे लोग /') और उन क़लमकारों की पोल कौन खोलेगा जो सत्ता के तलवे चाटकर प्रतिष्ठिानों पर क़बिज़ हैं? ('क़लम बेचने वाले / नित करते हैं / छप्पन भोग')। तुम्हारे रचना-कर्म पर सत्यप्रकाश मिश्र की टिप्पणी अकारण नहीं है, "भाषा को बोली से समृद्ध करना और बोली को भाषा से भावित करने का प्रयत्न बड़े-से-बड़े लेखक से भी संभव नहीं, परंतु कैलाश ने जीवन भर बड़ा काम किया है।"

तो मेरे भाई! आज तुम्हारा न होना एक सच है, त्रासद और बेहद तकलीफ़देह! किंतु अब उसका गिला क्या। गिला तो इसका है कि तुमने जो लिखा वह तुम्ही लिख सकते थे, केवल तुम। सुदूर भविष्य में कोई लिख पाएगा, मुझे संदेह है।

संपर्क : डी० ब्लॉक, बी०पी०सिन्हा पथ,
क़दम कुआँ, पटना- 800003
09334310250 (मो०)

हम कब आत्मसात करेंगे लोकतांत्रिक मूल्यों को

○ सिद्धेश्वर

भारतीय राजनीति में बढ़ती असहिष्णुता, वाणी में असंयम और हिंसा पर उतारू नेताओं व जनप्रतिनिधियों के आचरण को देखते हुए यदि कोई इस निष्कर्ष पर पहुँचे तो ग़लत नहीं होगा कि हमने आज़ादी के संसदीय लोकतांत्रिक प्रणाली तो अपना ली है अपने देश के संचालन के लिए, पर लोकतांत्रिक मूल्यों को अबतक आत्मसात नहीं कर पाए हैं। संसद तथा विधान मण्डलों में विपक्ष द्वारा बात-बात पर सदन को बाधित अथवा सदन का बहिष्कार करना, सत्ता का बहुमत के दंभ में विपक्ष की जायज़ माँगों-आपत्तियों की अनसूनी करना और पक्ष-विपक्ष के नेताओं का एक दूसरे को देख लेने की धमकी देना असहिष्णुता और लोकतंत्र में अनास्था का प्रमाण है, जो आए दिन सदन में देखने को मिलते हैं। सच तो यह है कि संसद एवं विधान मण्डलों के गिरते स्तर और सांसद एवं विधायकों के अमर्यादित होते जाने का प्रमाण है।

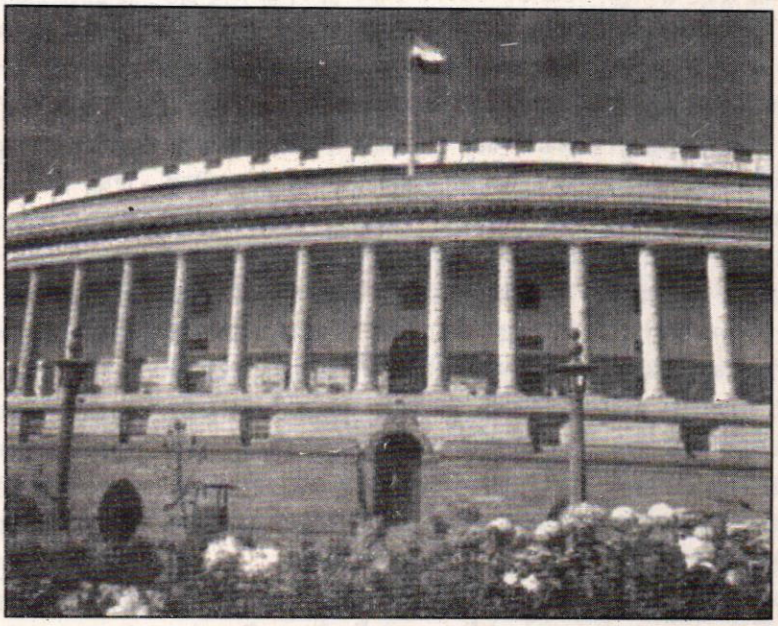

ध्यान देने की बात तो यह है कि लोकतंत्र वैचारिक असहिष्णुता और हिंसा का नकार है, जिसमें मतभेदों को बातचीत के ज़रिए सुलझाने की गुँजाइश है, असहमति के बावजूद बहुमत की राय का सम्मान दूसरी आवश्यक शर्त है। लेकिन दु:खद स्थिति यह है कि लोकतंत्र की स्वघोषित पहरुए ही बहुधा लोकतंत्र को दाग़दार करते रहते हैं। दरअसल हमारे रहनुमा जनप्रतिनिधि इस पर गंभीर चिंतन करने की बजाए तात्कालिक स्वार्थ की राजनीति करते हैं, जिसके परिणामस्वरूप लोकतंत्र से आम आदमी का विश्वास टूटने का ख़तरा बढ़ते जा रहा है और जनप्रतिनिधियों से आम आदमी की दूरियाँ बढ़ती जा रही है।

पिछले दिनों संसद में सप्रंग सरकार के वाम और द्रमुक सदस्यों के बीच जो दुर्लभ नज़ारा देखने में आया, वह सुखद ही नहीं, शर्मनाक भी कहा जाएगा। संसदीय इतिहास में संभवत: यह पहला अवसर है जब सत्तारूढ़ गठबंधन के किसी घटक और उसे बाहर से समर्थन दे रहे दिलों के बीच हाथापाई की नौबत आई हो। बिडंबना यह है कि सदन की कार्यवाही को स्थगित करके भी एक ही पक्ष के दोनों समूहों की तनातनी को समाप्त नहीं किया जा सका। यह स्थिति लोकतांत्रिक मूल्यों और मान्यताओं का निरादर करने वाली है। इस पर उन्हें शर्मिंदा होना चाहिए लेकिन शर्मिंदगी का भाव तो कहीं नज़र नहीं आया। दरअसल आज की राजनीति ही ऐसी हो गई है। सच तो यह है कि यह एक यथार्थ है कि गठबंधन राजनीति के इस युग में सहयोगी दल अपने हितों की रक्षा करने के लिए ब्लैकमेलिंग का सहारा लेने से बाज़ नहीं आते। इस स्थिति में देश के समग्र हितों की रक्षा हो पाने की अपेक्षा कैसे की जा सकती है।

संसदभवन को लोकतंत्र का मंदिर कहा जाता है, जहाँ मत्था टेकने की 'ख़्वाहिश' सबकी होती है, लेकिन मत्था टेकनेवालों के ये सब कारनामे हो रहे हों तो मंदिर पर ख़तरा स्वाभाविक है। हमारे जनप्रतिनिधियों की ज़िंदगी और तौर-तरीक़े पर ग़ौर किया जाए तो कम से कम जनता-जनार्दन की सेवा और उनके दिलों में अमिट छाप बना लेना तो उनका उद्देश्य क़तई नहीं लगता। हमारे जनप्रतिनिधियों को सत्ता से इस क़दर लगाव हो चला है कि जनता भले ही ठुकरा दे लेकिन सत्ता के औज़ारों, प्रतीकों से चिपके रहने के लिए वे किसी हद को लाँघ सकते हैं, जैसा कि आए दिन ऐसा देखा जाता है कि संसद अथवा विधान मण्डल की सदस्यता समाप्त हो जाने के बाद भी सरकारी बंगलों से हटने का आज के जनप्रतिनिधि नाम ही नहीं लेते हैं।

इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि पूरे विश्व में भारतीय संसद की प्रतिष्ठा रही है, किंतु इधर हाल के वर्षों में सदन में जिस प्रकार का व्यवहार सांसदों द्वारा किया जा रहा है, उससे उसकी मर्यादा लगातार गिरती जा रही है, जो किसी भी मायने में उचित नहीं ठहराया जा सकता। आपको याद होगा कभी डॉ॰ राममनोहर लोहिया, हीरेन मुखर्जी, भूपेश गुप्ता जैसे संसद सदस्य हुआ करते थे, जिनके तर्कों के सामने सत्तापक्ष निरुत्तर हो जाता था। हमें आज भी अच्छी तरह याद है डॉ॰ लोहिया और पूर्व प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू के बीच आम आदमी की आमदनी को लेकर

जो बहस छिड़ी थी, वह आज भी सदन की कार्यवाही का बेजोड़ नमूना है। 'छह आने बनाम सवा रुपया' की बहस पुराने लोगों को अब भी याद होगी। तब के लोग पढ़ते-लिखते थे, लेकिन आज के सांसद व विधायकों को पढ़ने-लिखने से कोई मतलब नहीं। तभी पिछले दिनों बिहार विधान परिषद् की ओर से परिषद् के सभागार में प्रो॰ राम बुझावन बाबू की पुस्तक 'सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार' तथा मेरी अद्यतन कृति 'समकालीन यथार्थबोध' के लोकार्पण समारोह के अध्यक्षीय उद्गार में परिषद् के सभापति प्रो॰ अरुण कुमार ने स्वाध्याय की महत्ता पर प्रकाश डालते हुए इस बात पर चिंता ज़ाहिर की थी कि बिहार विधान मण्डल तथा संसद के पुस्तकालय समृद्ध होते हुए भी पाठकों के लिए बाद जोह रहे हैं, उनके सामने पाठकों का संकट है। यह इस बात का परिचायक है कि स्वाध्याय की प्रवृत्ति विधायकों एवं सांसदों में लगातार कम होती जा रही है जो चिंताजनक है। फिर भी वे ज्ञानवान होने का दंभ भरते हैं। यही कारण है कि जनप्रतिनिधि के रूप में सांसदों, मंत्रियों और विधायकों का व्यवहार इतना गिर चुका है कि जो जनता वोट देकर उन्हें संसद तथा विधानमण्डलों में भेजती है, स्वयं शर्मसार हो जाती है। सन् 1987 के पहले ऐसी स्थिति नहीं थी, लेकिन अब तो इस स्थिति के लिए कोई पुरसानेहाल नहीं है। क्या यह हमारे जनप्रतिनिधियों के लिए शर्मनाक नहीं कि जिस लोकतंत्र के मंदिर में देश भर में होने वाली अनियमितताओं पर उँगली उठती है वहाँ खुद जनप्रतिनिधियों की अनियमितताओं पर आपराधिक क़िस्म की चुप्पी दिखाई पड़ती है।

दरअसल जिस संयम और विवेक की अपेक्षा नेताओं एवं जनप्रतिनिधियों से की जाती है, वह नदारद है। कारण कि ऐसे ही व्यवहार राजनेताओं की पहचान बनते जा रहे हैं। नेताओं द्वारा सिर्फ़ अपनी परवाह करने की प्रवृत्ति देश व लोकतंत्र के व्यापक हित में घातक साबित हो सकती है। लिहाज़ा हर नेता व जनप्रतिनिधि के लिए यह ज़रूरी है कि संसद अथवा विधानमण्डल के साथ किसी भी क्षेत्र में कार्यकलाप के दौरान संयमित व्यवहार करे। विपक्ष के लोगों को भी सत्तापक्ष के लोग वही सम्मान दे जो वह अपने लिए चाहता है। इससे न सिर्फ़ पक्ष-विपक्ष के बीच सद्भाव का वातावरण बनेगा, बल्कि लोकतंत्र पर मंडाते ख़तरे से बचा जा सकता है, जिसके संबंध में अब तक शंकाएँ व्यक्त की जाती रही हैं। तो फिर भारतीय राजनीति का हर नेता और जनप्रतिनिधि इस बात का संकल्प ले कि संयमित और मर्यादित व्यवहार उसकी पहचान बनेगी। अन्यथा राजनेताओं का आज जो हस्र है, आउटलूक के पिछले दिनों सी-फोर द्वारा कराए गए सर्वेक्षण से उजागर होता है। इस सर्वेक्षण के अनुसार शहर के 83 प्रतिशत और गाँव के 73 प्रतिशत लोगों ने कहा कि हम नेताओं से नफ़रत करते हैं। सर्वेक्षण के मुताबिक़ 84 प्रतिशत लोगों को नेताओं के आंदोलन में कोई भरोसा नहीं रह गया है। उनका मानना है कि नेता भ्रष्ट और बेईमान होते हैं। वे अपना स्वार्थ साधने के लिए झूठे वायदे करते हैं और सत्ता के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं। 65 प्रतिशत लोग यह भी मानते हैं कि ईमानदार लोग राजनीति में सफल नहीं हो सकते हैं तथा अधिकतर लोग यह भी यक़ीन करते हैं कि महिला नेता पुरुषों की तुलना में ज़्यादा ईमानदार होती हैं। 66 प्रतिशत लोगों ने अपने बच्चों को राजनीति में नहीं जाने देने की इच्छा जताई। इस प्रकार देखें, तो भारतीय राजनीति में अथवा हमारी संसदीय लोकतंत्र पद्धति में राजनेताओं का बहुत बुरा हाल है। आँसू बहाकर इससे उबारा नहीं जा सकता। आज हमारे लोकतांत्रिक ढाँचे की जो ख़स्ता हालत है उसकी वजह अल्लामा इक़बाल ने वर्षों पूर्व बयान कर दिया था।

जम्हुरियत इए तर्ज़े हकूमत है कि जिसमें
बंदों को गिना करते हैं, तौला नहीं करते

सचमुच आज हमारे लोकतंत्र की अत्यंत दुखदायी स्थिति है जिससे उबरने की ज़रूरत है। आज लोकतंत्र को भीड़तंत्र का नाम दिया जा रहा है। मुझे लगता है कि यदि हमें लोकतंत्र को बचाना है, तो अपने संवैधानिक ढाँचे को बदलना होगा, इसमें आमूलचूल परिवर्तन करने होंगे। मेरी राय में संसद और विधानमण्डलों की सदस्यता के लिए न्यूनतम शिक्षा तय की जानी चाहिए। समान नागरिक संहिता हो और जम्मू-कश्मीर समेत किसी भी राज्य को धारा 370 के अधीन विशेष दर्जा देने का प्रावधान समाप्त हो। यानी लोकतंत्र को बचाने के लिए कोई क्रांतिकारी क़दम उठाया जाए। आँसू न बहाकर आँसूओं पर क़ाबू पाने से ही बात बनेगी। अन्यथा संसद तथा विधानमण्डलों में जिस तेज़ी से आपराधिक प्रवृत्ति के लोग धडल्ले से प्रवेश कर रहे हैं और लोकतांत्रिक संस्थाओं की धज्जी उड़ा रहे हैं, उससे लोकतंत्र ही ख़तरा में पड़ता दिख रहा है। आज संसद में 40 संसदों तथा देश भर में 700 विधायकों पर अपराधिक मामले चल रहे हैं। कुछ दण्डित भी हुए हैं, कुछ जेल में रहते हुए चुनाव लड़े और जीत भी गए। सांसद शिबू सोरेन, सैयद शहाबुद्दीन और कुछ अन्य जेल में हैं। अब तो स्थिति यहाँ तक आ पहुँची है कि उच्चतम न्यायालय के न्यायाधीश को धमकियाँ मिलने लगी हैं।पिछले दिनों सुप्रीम कोट के जज डॉ॰ ए॰आर॰ लक्ष्मणन ने 16 3र्च, 2007 को मुलायम सिंह यादव के सांसद पुत्र अखिलेश यादव की आय के स्रोत से अधिक संपत्ति के मामले में समीक्षा याचिका की इस आधार पर सुनवाई करने से इनकार कर दिया कि उन्हें गत दिवस एक अनाम धमकी भरा पत्र मिला है। उन्होंने भावुक स्वर में आँखें पोछते हुए कहा कि उक्त पत्र में लगाए गए आरोपों से वह और उनकी पत्नी अत्यंत व्यथित हुए हैं।

मेरे ख़्याल से इस बात पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए कि राजनीति में ऐसे अपराधी तत्त्वों का प्रवेश रुके, जो हमारे लोकतांत्रिक डाँचे के प्रमुख स्तभों के लिए गंभीर ख़तरा उत्पन्न कर रहे हैं। यदि लोकतांत्रिक मूल्यों और मान्यताओं का इसी तरह रिदर होता रहा, तो यक़ीन मानिए, वह दिन दूर नहीं जब भारतीय राजनीति में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' वाली कहावत को चरितार्थ करने में राजनेता संकोच नहीं करेंगे। इसलिए आज की राजनीति पूरी तरह लोकतंत्र का मज़ाक़ बनकर रह गई है और लोगों को अब फिर से एक बार चेतना होगा ताकि आगे आने वाले दिन और विकृत और बर्बाद न हो।

संपर्क : 'दृष्टि', यू॰ 207,
शकरपुर, विकास मार्ग,
दिल्ली-110092

गृहस्थ जीवन की ख़ुशहाली का राज़

○ जगदीश पाल सनपेडिया

मनुष्य सदैव सुख, शांति और श्रेष्ठ जीवन चाहता है, किंतु उसके स्वयं के स्तर पर दुःख, कुंठा, निराशा, तनाव, उपेक्षा और उलझन तथा परस्पर के स्तर पर मतभेद, अविश्वास, झगड़ा, छल, कपट, ईर्ष्या, द्वेष आदि के चलते वह समस्याओं से घिरा रहता है। दरअसल भौतिकवादी युग में मौजूदा दौर में कम समय में और कम मेहनत से आराम के साधन जुटाने की आपाधापी में इंसान और उसकी इंसानियत गौण होती जा रही है। अशिक्षा और विचारहीनता के अलावा लालच और महत्त्वाकांक्षा आदमी की आँखों पर पट्टी और विवेक पर पर्दा डाल देता है। नतीजा यह है कि आज समाज भले ही भौतिक स्तर पर उन्नति कर रहा हो, लेकिन नैतिक स्तर पर उसमें निरंतर गिरावट आई है। हत्या, बलात्कार, धोखाधड़ी, भ्रष्टाचार, दुराचार आदि को देख-सुनकर ऐसा लगता है कि हम आदिम युग में लौट रहे हैं, जहाँ मानवीय मूल्य, नैतिक आदर्शों और सद्भाव-सौहार्द के लिए कोई जगह नहीं थी।

सच तो यह है कि जीवन जिया जाए और पूरे होश में जिया जाए, जिसके लिए चेहरे के पीछे कई चेहरा रखने वाले को पहचानना होगा और ख़ुशहाली का जीवन जीने के लिए सभ्य समाज को अपनी प्राथमिकताओं को फिर से तय कर इंसान को उससे ऊपर रखना होगा, वरना प्रेम और तमाम मूल्य कलंकित होते रहेंगे। इन्हीं प्रथम प्राथमिकताओं में एक है पुरुष और स्त्री के बीच एक दूसरे के प्रति समर्पण और सामंजस्य का भाव जिसके लिए ज़रूरत है सामाजिक चेतना और समझदारी की। इसके बिना प्रेम विवाह जैसे औज़ार भी भोंथरे हो जाते हैं। जिस समाज में नारी देवी, दुर्गा और लक्ष्मी सदृश्य पूजी जाती रही है, आज पुरुष वर्चस्व और प्रभुत्व की वजह से औरतें धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक और पारिवारिक प्रायः सभी पहलुओं पर असुरक्षित हैं और वे शोषण का शिकार हो रही हैं।

स्त्री के त्याग, तप और बलिदान को पुरुष ने हमेशा नकारा है। उसके दर्द की कथा को सब ने कल्पित कहकर ठुकराया है। स्त्री के लिए पति का सुख और पुत्र का मुख स्वर्गीय सुख माने जाते हैं। पति जहाँ भी रहे, दिन भर चाहे जहाँ काम करे, किंतु शाम को घर लौट आए-यही उसकी लालसा रहती है, लेकिन पुरुष कभी परवाह नहीं करता स्त्री के अंतर्मन में छिपी पीड़ा को। पति यदि पत्नी के अंतर्मन में छिपी इस पीड़ा को समझना शुरू कर दे और दोनों के बीच बहुपक्षीय चेतना आ जाए, तो किसी भी औरत को न ''बाबा'' के पास जाना पड़े और न पति की शिकायत लेकर थाने।

व्यापार से जुड़े समाज के एक अनुभवी व संवेदनशील लेखक जगदीश पाल सनपेड़िया जी गृहस्थ जीवन के खट्टे-मीठे अनुभवों का सही आकलन करते हुए ख़ुशहाल जीवन जीने का राज़ बता रहे हैं इस लेख में, जिस पर ख़ासकर आज की नई पीढ़ी के युवाओं को ध्यान देने की ज़रूरत है। विश्वास है पाठकों को यह लेख पसंद आएगा और वे इसे अपनाकर ख़ुशहाल जीवन जी पाएँगे। लेखक को साधुवाद।

○ संपादक

यंत्रयुग ने पूरी मानवता को प्रभावित किया है। जब जीवन के शाश्वत मूल्य धराशायी हो रहे हैं, जब सांस्कृतिक धरोहर को ही नुक़सान पहुँचा रहा है, तो गृहस्थ जीवन में लोग अपने आपको कैसे सुरक्षित रख सकते हैं। लोक विश्वास खण्डित हो रहा है, जीवन-मूल्य बदल रहे हैं, संयुक्त परिवार में विघटन हो रहा है और पारिवारिक रिश्ते चरमरा रहे हैं, तो पति-पत्नी, भाई-भाई तथा बेटों के बीच कुनमुनाहट स्वाभाविक है।

प्राचीन शास्त्रों में कहा गया है कि ''जस्य नारी पुज्यन्ते रमन्तो तस्य देवता''अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है वहाँ देवता निवास करते हैं। इसी प्रकार मनु के अनुसार घर में स्त्री को साक्षात 'श्री लक्ष्मी' की संज्ञा दी गई है और मनुस्मृति के तीसरे अध्याय में सुखी जीवन का वर्णन करते हुए बताया गया है कि पिता, भाई, पति और देवर अपने कुल का बहुत कल्याण चाहते हैं, उन्हें स्त्रियों का सम्मान करना चाहिए। आपको याद होगा कि कुछ समय

पूर्व लड़कीवाले रिश्ते के लिए जब लड़केवाले के घर जाते थे तो पूरे परिवार में ख़ुशी की लहर दौड़ जाती थी। उसका बड़ा सम्मान किया जाता था। उन दिनों लड़की देखने की प्रथा नहीं थी। जैसी भी लड़की आ गई उसी को घर की लक्ष्मी मानकर उसे आदर-सम्मान किया जाता था। मौजूदा दौर के उपभोक्तावादी युग में सब कुछ बदल गया। रिश्ते-नाते बदल गए। अब तो जैसे ही लड़कीवाले अपनी लड़की के रिश्ते के वास्ते लड़केवाले के घर पहुँचते हैं, तो सर्वप्रथम दहेज की राशि के बारे में लड़कीवाले से पूछा जाता है और सौदेबाज़ी होती है, ठीक वैसे ही जैसे बाज़ार में भेंड़-बकरियों की ख़रीद-बिक्री की जाती हैं। यही नहीं, यदि किसी तरह लेन-देन के बाद बात बन भी गई और शादी की रस्म अदायगी भी हो गई तो लड़के अथवा उसके घरवाले लालच पचा नहीं पाते, जिसका नतीजा होता है कि आए दिन दहेज के लिए बहुएँ जलाई जा रही हैं, उनपर तरह-तरह के अत्याचार होते हैं और अंततः या तो पत्नी आत्महत्या करने पर

मजबूर हो जाती है या फिर मुक़दमेबाज़ी शुरू हो जाती है। तलाक़ की जितनी ख़बरें समाचार पत्रों में पढ़ने को मिलती हैं वह आँकड़े चौकाने वाले हैं। आख़िर क्या हो गया है वर्तमान समाज को? सास यह भूल जाती है कि वह भी कभी बहू थी। जब वह सास बन जाती है, तो अपने समय को याद नहीं करती और अपनी बहुओं पर ज़ुल्म ढाना शुरू कर देती है। अंततः घर को नरक बना देती है। आज लोक जीवन में ससुराल, सास-ननद आदि अत्याचार के प्रतीक बन गए हैं। सद्यः विवाहिता नव युवती ससुराल में एकदम नवीन अजनबी वातावरण को आत्मसात नहीं कर पाती। जिस सास ने बधू-जीवन में अपनी सास के अत्याचार सहन किए, वह उनका बदला अपनी बहू से लेती है। दुर्भाग्य से यदि पति ने भी अपनी माँ, बहन, चाचा-चाचियों का पक्ष लिया, तो पीड़ित एवं क्रुद्ध वधू कुंठा और ढीढता की कोठरी में बंद होती चली जाती है। इस प्रकार नारी का सम्मान और अपमान नारी के हाथ में है। सास जैसा कहेगी सारा परिवार वैसा ही समझता है, मानता है।

पारिवारिक जीवन में कलह और अशांति के इस दौर में लोगों को प्यार, समर्पण, सामंजस्य, सद्भावना और सौहार्द की महत्ता को समझना होगा। ऐसे समय में ज़रा प्यार का बीज बोकर तो देखें, गृहलक्ष्मी को आदर और सम्मान देकर तो देखें, लालच को त्याग कर तो देखें, घर में कैसे शांति आती है और गृहलक्ष्मी को आदर-सम्मान देने से कैसे घर में देवता रमण करते हैं। एक पत्नी जब पति को समर्पित करती है, तो उसे जीवन में ख़ुशियाँ मिल जाती हैं। जिस प्रकार शारीरिक मिलन आनंद प्रदान करता है, उसी प्रकार मन का निश्छल मिलन भी आनंद देता है। दरअसल मन की गांठ, मन की दीवार, मन के मतभेदों की वजह से ही पति-पत्नी का दिल एक नहीं हो पाता। ख़ासकर शिक्षित होने अथवा कामकाजी महिला होने के बाद अधिकांश पत्नियाँ पुरुषों के नियंत्रण और अनुशासन में रहना पसंद नहीं करतीं, बल्कि पुरुषों को अपने नियंत्रण में रखने को अधिक आतुर होती हैं। यहाँ तक कि ऐसी ही पत्नियाँ पति को उसके माँ-बाप से भी दूर करने की कोशिश करती हैं, जिसके फलस्वरूप पारिवारिक रिश्तों में कड़वाहट और तनाव हो जाता है। सच तो यह है कि आज की शिक्षित और कमकाजी पत्नियाँ स्वतंत्रता और स्वच्छंदता के साथ अधिकार भी चाहती हैं, जो उन्हें अवश्य मिलनी चाहिए, किंतु वह स्वच्छंदता मनमानी में बदल जाती है और अधिकार कर्त्तव्यों की अनदेखी कर देता है तथा अधिकार के साथ अहंकार भी आ जाती है, जो परिवार को बर्बाद कर देता है। परिवार में अराजकता के आ जाने से सुख-शांति छीन जाती है। दरअसल दूरदर्शन तथा फ़िल्मों और टी॰वी॰ के अनेक चैनलों ने अपसंस्कृति तो फैलाई ही है, परिवार में अनेक बुराईयाँ उत्पन्न कर दी हैं। विविध चैनलों पर दिखाई जाने वाली धारावाहिकों आदि से जहाँ हमारी संस्कृति की उच्च परंपराएँ लुप्त होती जा रही है, वहीं अधिकांश शिक्षित महिलाएँ अपने पति के प्रति समर्पण करने को अपमान महसूस करने लगी है।

भारत जैसे आध्यात्मिक देश में विवाह को एक पवित्र धार्मिक बंधन माना गया है। मंडप में अग्नि के समक्ष सात फेरे लेकर जीवन भर साथ निभाने की प्रतिज्ञा की जाती है। पत्नी अपने त्याग और सहनशीलता से जीवन की डोर को और पूरे परिवार को बाँधे रखती है, किंतु पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के आधुनिकरण में जहाँ आज न तो कोई पत्नी, पति को परमेश्वर के रूप में देखना पसंद करती है और न वह उसे रक्षक या पालक मानती है, वहीं न तो कोई पति पत्नी को लक्ष्मी या अर्द्धांगिनी समझता है। जब कि असलियत यह है कि पत्नी आज भी संतान उत्पन्न करने से लेकर उसका पालन-पोषण, भोजन-वस्त्र का प्रबंध, घर के साधनों की देखभाल करने तक का सभी काम करती है। सच मानें तो स्त्री जीवन के बिना एक गृहस्थ जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। फिर भी अहंकार रूपी शैतान के जाग जाने, समर्पण और सामंजस्य की कमी होने तथा व्यावहारिक जीवन में अधिक सूझबूझ और विनम्रता की कमी होने से आज गृहस्थ जीवन में सब कुछ उल्टा हो गया है। यही कारण है कि शिक्षित परिवार आज मानसिक रूप से जितने तनावपूर्ण, दुखी और परेशान दिखाई देते हैं उतने अल्प शिक्षित या अशिक्षित दंपति दुखी नहीं हैं, भले ही उन्हें सुख-सुविधा के साधन उपलब्ध नहीं हों। अधिकारों और स्वच्छंदता के प्रति अतिसंवेदनशील होने से परिवार में थोड़ी-सी भी अप्रिय स्थिति निर्मित होने अथवा थोड़ा-भी मतभेद होने या पसंद-नापसंद टकराने से वे मीडिया और मानवाधिकार आयोग अथवा महिला आयोग या अदालत तक पहुँच जाते हैं और तिल को ताड़ बना देते हैं और अपने ही घर में आग लगा कर तमाशा देखती हैं। पारिवारिक संबंधों और मूल्यों की दृष्टि से इसे क़तई ठीक नहीं कहा जा सकता। जबकि समस्या को शांतिपूर्वक घर में भी मिल-जुलकर निबटाया जा सकता है। जब घर में समस्या का निदान न निकल पाए तभी अदालत का दरवाज़ा खटखटाया जाए।

मौजूदा दौर में पत्नियों की स्थिति तो दयनीय है ही बेचारे पति भी कम परेशान नहीं हैं। यदि वह पत्नी को खुश रखना चाहता है और उसके अनुसार सब निर्णय लेता है, तो उसके माँ-बाप उससे नाराज़ हो उसे पत्नी का गुलाम तक कह डालते हैं और जब वह माता-पिता की पसंद-नापसंद का ख़्याल रखकर निर्णय लेता है, तो पत्नी रूठ जाती है। इतना ही नहीं, यदि वह नौकरी करता है तो अपने उच्चाधिकारी से डाँट-फटकार सहता है, तनाव झेलता है और घर आने पर पत्नी भी समस्याओं की झाड़ी लगाकर उसे दो-चार सुना देती है। ऐसी स्थिति में वह दया का पात्र बन जाता है।

मेरा ख़्याल है कि उपर्युक्त सभी समस्याओं का निदान निकल सकता है, बशर्ते कि घर की लक्ष्मी यानी पत्नी को आदर-सम्मान के साथ-साथ उसके साथ सामंजस्य स्थापित किया जाए। पत्नी को भी पति के प्रति समर्पण का भाव दिखलाया जाए। खुशियाँ घर के भीतर और अपने अंदर ही निहित होती हैं। निःस्वार्थ भाव से किया गया हर कार्य दिल को सकून और खुशी बढ़ा देता है। छोटे-छोटे कार्यों को प्रसन्नतापूर्वक मिलजूलकर करने से जीवन के हर पल का आनंद उठाया जा सकता है। घरेलू कार्यों में भागीदारी निभाने से पारिवारिक रिश्ते मज़बूत होते हैं और परिवार के सदस्यों के बीच निकटता भी बनी रहती है। इस प्रकार करुणा, सहृदयता तथा सद्भावना की त्रिवेणी अवगाहन करके ही पति पत्नी की निकटता का अधिकारी होता है। यही वह राज़ है जिसके आधार पर गृहस्थ जीवन में खुशहाली लाई जा सकती है।

संपर्क : संरक्षक, महाराजा अजमीढ़
स्वर्णकार विकास संघ (प॰),
लक्ष्मीनगर, शकरपुर, दिल्ली-92

हिंसक प्रवृत्तियों पर क़ाबू पाने के लिए साझा प्रयास की जरूरत–संयोजक, अहिंसा समवाय

हिंसक प्रवृत्तियों पर क़ाबू कैसे पाया जाए

विगत 12 जून से 14 जून तक राजस्थान के राजसमंद में आयोजित अहिंसा समवाय की तीन दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला संपन्न हुई जिसमें 'हिंसक प्रवृत्तियों पर काबू कैसे पाया जाए' विषय को प्रस्तुत करते हुए अहिंसा समवाय के संयोजक सिद्धेश्वर ने हिंसक प्रवृत्तियों पर काबू पाने के लिए साझा प्रयास की जरूरत जताई। प्रस्तुत है यहाँ उनके विषय प्रवर्तन के अंश।

❍ सहायक संपादक

वर्तमान दौर के उत्साही एवं सक्रिय समाज में भविष्य और स्वार्थ के कारण हर व्यक्ति या संगठन अलग-थलग पड़ जाता है। हालांकि इस अंधेरे में उसे विकल्प की तलाश है। इसके समाधान में मुख्य प्रश्न यह है कि हम विचार और अनुभव के दो रास्ते पर स्वयं के समर्पण से किस हद तक इसे पाट सकते हैं। आज जिस तेज़ी से समाज के हर क्षेत्र में हिंसक प्रवृत्तियाँ बढ़ रही हैं, यहाँ तक कि हमारे घर-आँगन में भी यह दस्तक दे रही हैं, ऐसे समय में समान विचारधारा तथा एक मन के लोग और समानधर्मी संस्थाएँ एक साथ बैठें तथा टुकड़ों में बिखरी शक्तियों को सजोकर समय का साक्षात्कार करें, तो बौखलाए और उकताए हुए समाज व राष्ट्र को एक वैकल्पिक सभ्यता-संस्कृति दी जा सकती है।

हमारा राष्ट्र सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों का केंद्र रहा है। समाजवाद और सामाजिक न्याय हमारा लक्ष्य एवं आदर्श रहा है। भारत-भूमि को विश्व की समस्त संस्कृतियों का उद्‌गम स्रोत माना गया है, किंतु वही राष्ट्र आज अभूतपूर्व सामाजिक तथा सांस्कृतिक बदहाली के बीच खड़ा है। दूसरों को प्रवाहमान करने वाला इसका उद्‌गम स्रोत स्वयं सूख रहा है। आख़िर क्यों? क्या आज हम अपने सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्यों से कटते नहीं जा रहे हैं? सामाजिक स्तर पर हम विभिन्न जातियों, उपजातियों धर्म-संप्रदायों आदि में बंटते चले जा रहे हैं, जिसके परिमाणस्वरूप आज हमारे जीवन में असहिष्णुता व्याप्त है, धैर्य का सर्वथा अभाव पाते हैं तथा तथ्यों और चीज़ों को विकृत होने में आज देर नहीं लगती।

अणुव्रत महासमिति के तत्त्वावधान में राजस्थान के तपो:भूमि राजसमंद में आयोजित अहंसासमवाय के तीन दिवसीय कार्यशाला व सम्मेलन में इन मुद्दों पर गंभीरतापूर्वक विचार करना है। आज जब हम हिंसक प्रवृत्तियाँ जैसी समस्याओं पर विचार करते हैं, तो पाते हैं कि समाज में फैल रही इन विकृत्तियों के और चाहे जितने करण हों, मगर पश्चिमी उपभोगतावादी संस्कृति का अँधानुकरण तथा दूरदर्शन एवं टी॰वी॰ के विभिन्न चैनलों द्वारा सेक्स एवं हिंसा पर आधारित कार्यक्रमों के प्रसारण से युवा मनों पर इसके बुरे प्रभाव पड़ रहे हैं। यह हमारी संस्कृतिक विरासत पर जबरदस्त हमला है। कारण कि आज के बदलते सामाजिक-सांस्कृतिक परिदृश्य में हम एक अजीब द्वंद्व से गुज़र रहे हैं। हम अपनी पहचान अंदर से नहीं, बाहर से बना रहे हैं, जो भौतिकवादी जीवन का प्रभाव है, किंतु सच्चाई यह है कि मनुष्य के अंदर जो देव गुण हैं, वही संस्कृति है। पर हर कोई मंदिर, मस्जिद, गिरजा, गरुद्वारा और धार्मिक मेलों में लगा है। आज समाज में दोहरी ज़िंदगी जी रहे लोगों के चरित्र में रूढ़ियों, अँधविश्वासों एवं असमर्थों को ठगे जाने की विवशताओं ने हमें मजबूर किया है कि हम समाज व राष्ट्र के बारे में तेज़ी से विलुप्त होती जा रही साहित्य-कलाओं तथा संस्कृतियों का नैतिक परिस्कार कर उनमें वैचारिक चेतना का संचार करें, सामाजिक प्रासंगिता, अश्लीलता की समस्याओं से निबटने का उपाय सोचे तभी समाज में आ रही विकृतियों से बचा जा सकता है और हिंसक प्रवृत्तियों पर क़ाबू पाया जा सकता है, क्योंकि साहित्य, कला स्वयं अपने आप में इस सांस्कृतिक विपन्नता का सबसे बड़ा प्रतिकार है, जो सिर्फ़ बुद्धि का नहीं, भावना, कल्पना और ऐंद्रिकमनोभावों की भी दीक्षा है।

सच तो यह है कि जब मनुष्य का मनुष्यता पर से विश्वास उठ जाता है, तभी वह हिंसा का सहारा लेने के लिए विवश हो जाता है। इसी हिंसा के प्रतीक प्रवृत्तियों से मुक्ति के लिए हमें आज विचार करना है। मुझे लगता है कि यह मुक्ति ह्रदय परिवर्तन करने से ही मिल सकती है।

चौथी बात यह है कि लोकतंत्र के मुखौटे में आज जिस प्रकार हिंसा सत्ता हासिल करने के तमाम कर्क-कुकर्म धड़ल्ले से हा रहे हैं, स्वार्थ की राजनीति जिस ढ़ंग से बढ़ रही है, वह चिंतनीय ही नहीं, दुर्भाग्यपूर्ण है। जनता की गाढ़ी कमाई पर विधायिका के सदस्य, राजनेता और नौकरशाह सुख-समृद्धि के शिखर पर बैठ रहे हैं और भारत की तक़रीबन 45 करोड़ जनता मनुष्य से सो दर्जा नीचे पशुवत जीने को अभिशप्ति हैं। एक ओर आकाश को छूती मँहगाई, सीमातोड़ भ्रष्टाचार, बर्बता की हद तक पहुँची आपराधिक हिंसा, सत्ता के लिए सांप्रदायकता, जातिवादिता और सामाजिक न्याय का नग्न नृत्य है, तो दूसरी ओर शिक्षित और अशिक्षित बेरोज़गार भूख के कगार पर खड़ा नौजवान है। यही है हमारा आज़ाद हिंदुस्तान। ऐसी भयावह व विषम स्थिति में हम भारत के सजग एवं अहिंसक प्रवृत्ति के नागरिक मात्र तमाशबीन बनकर नहीं रह सकते। हम लोगों में चेतना जागृत करनें के लिए संगठित होकर उसके उपाय खोजने होंगे और साझा कार्यक्रम तैयार कर उस दिशा में अग्रसर होना होगा और साथ ही स्थिति को बेबाक़ ढंग से सामने रखकर आत्ममुग्ध लोगों को कुछ सोचने के लिए

उकसाना होगा। अहिंसा समवाय आपके बीच एक ऐसा मंच है जिसके ज़रिए यह बात बन सकती है।

इस संदर्भ में यह कहना यथोचित होगा कि अनेक विसंगतियों और विभिन्नताओं के बावजूद अंततः जनता के सामूहिक विवेक पर ही कोई समाज व राष्ट्र खड़ा रहता है और यह कहने में हमें क़तई संकोच नहीं है कि भारतीय जनता का सामूहिक विवेक बहुत जाग्रत है, जो शेष प्रसंगों और रूझाने को गौण कर देता है। आख़िर तभी तो वह भ्रष्ट राजनीतिक माहौल में बावजूद प्रजातंत्र को जीवित रखे हुए है।

दरअसल हिंसा और आतंकवाद जैसी समस्या का समाधान क्रियाशीलता से ही है, न कि केवल जबान चलाने से। हिंसा की समस्या से निजात पाने के लिए प्रयास प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्तर पर तो करना ही होगा, लेकिन सामाजिक ढंग से किए गए प्रयासों की सफलता की आशा निश्चित रूप से अधिक होती है। ऐसा भी नहीं है कि हिंसा की समस्या को दूर करने के लिए लोगों ने सुझाव न दिए हों, आए दिन इस समस्या पर लेखों के लिखे जाने या कार्यशाला एवं सभा-संगोष्ठियाँ आयोजित का सिलसिला चलता रहा है। हिंसा की समस्या पर कई शोध-पत्र भी प्रकाशित हो चुके हैं तथा कई पुस्तकें आईं और उनकी हज़ारों प्रतियाँ भी बिकीं। परंतु समस्या के समाधान की दिशा में बहुत कुछ होता नहीं दिखता है, बल्कि सच तो यह है कि हिंसा घटने की बजाय दिनोदिन और बढ़ रही है।

ऐसा लगता है कि जो कुछ कर सकने में समर्थ हैं वे इस समस्या पर लेख लिखकर या व्याख्यान देकर ही तसल्ली कर लेते हैं। लेखों और व्यख्यानों से आगे आज एक ऐसे संगठित प्रयास की आवश्यकता है, जिसमें जन सामान्य की भागीदारी सुनिश्चित की जाए। ऐसे सामूहिक प्रयास के माध्यम से हर स्तर पर, हर क्षेत्र में एवं हर क़दम पर हिंसक प्रवृत्तियों का विरोध किया जाना चाहिए। हम सब इस बात से पूर्णतः अवगत हैं कि जिस प्रकार 19 वीं सदी के अमेरिका के प्रसिद्ध विचारक डेविड हेनरी थोरा अमेरिका में व्याप्त दास प्रथा से क्षुब्ध होकर जहाँ व्यक्तिगत प्रयास एवं सामूहिक संघर्ष से दास प्रथा को नया 'आयाम' दिया, वहीं राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने सामूहिक संघर्ष छेड़कर एवं संघर्ष में देशवासियों की भागीदारी सुनिश्चित करके नया इतिहास ही रच दिया। हिंसा से मुक्त होने या उस पर क़ाबू पाने के लिए देश ऐसे ही क़दमों का वर्षों से इंतज़ार कर रहा है। समय का तक़ाज़ा है कि अणुव्रत महासमिति के बैनर तले अहिंसा समवाय ऐसे ही क़दमों की ओर अग्रसर होने के लिए प्रयास करें जिसमें आप सभी की सहभागिता आवश्यक है।

–सिद्धेश्वर
संयोजक, अहिंसा समवाय,
(अणुव्रत महासमिति)
अणुवत भवन,
नई दिल्ली-110002

31 अक्टूबर, 2007 को दिल्ली में जंगे आज़ादी 1857 की 150 वीं वर्षगांठ और सरदार पटेल की 132 वीं जयंती पर मंच द्वारा भव्य समारोह एवं सांस्कृतिक संध्या का आयोजन

'राष्ट्रीय विचार मंच' की बैठक में लिए गए निर्णय

जंगे आज़ादी 1857 की 150 वीं वर्षगांठ और लौहपुरुष सरदार वल्लभभाई पटेल की 132 वीं जयंती के अवसर पर राष्ट्रीय विचार मंच और उसके मुख्य पत्र 'विचार दृष्टि' के संयुक्त तत्त्वावधान में आगामी 31 अक्टूबर, 2007 को संध्या 5 बजे से 9 बजे रात्रि तक राष्ट्रीय राजधानी नई दिल्ली के 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग स्थित राजेन्द्र भवन के वातानुकूलित सभागार में राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना जागृत तथा वतन पर मरने वाले शहीदों को स्मरण करने के लिए एक भव्य समारोह किया जाएगा। मंच तथा पत्रिका से जुड़े सतेन्द्र सिंह तथा अरविंद कुमार के प्रस्ताव पर इस आशय का एक सर्वसम्मत निर्णय विगत 6 मई, 2007 को संध्या 7 बजे दिल्ली के स्कूल ब्लॉक, शकरपुर स्थित राजीव पेपर मार्ट के कार्यालय प्रांगण में लिया गया। श्री सतेन्द्र सिंह की अध्यक्षता में संपन्न बैठक में यह भी निर्णय लिया गया कि इस अवसर पर एक सुरुचिपूर्ण स्मारिका 'राष्ट्र चेता' के साथ-साथ मंच की ओर से प्रकाशित पुस्तक 'राष्ट्रीयता : विविध आयाम' का भी लोकार्पण होगा।

बैठक में उक्त आयोजन को सफल बनाने के लिए एक आयोजन समिति का भी गठन किया गया, जिसके संयोजक तथा सह संयोजक क्रमशः सर्वश्री सतेन्द्र सिंह एवं अरविंद कुमार मनोनीत किए गए। साथ ही इन दोनों को अधिकृत किया गया कि 21 सदस्यीय इस समिति के अन्य सदस्यों को वे शीघ्र मनोनीत कर लें। साथ ही स्मारिका के सफल प्रकाशन हेतु एक स्मारिका समिति का भी गठन किया गया। उदय कुमार 'राज़', संयोजक, प्रो॰ पी॰के॰ झा, सह संयोजक और रविशंकर श्रोत्रिय को सहायक संयोजक मनोनीत किया गया। टी॰जी॰एस॰ के निदेशक अनिल कुमार उक्त दोनों समितियों के समन्वयक होंगे। आवश्यकतानुसार उक्त समितियों में अन्य सक्रिय सदस्यों को शामिल किया जा सकेगा। मंच के राष्ट्रीय महासचिव एवं बिहार इकाई के महासचिव स्मारिका के क्रमशः पदेन संपादक तथा उप संपादक रहेंगे।

मनोरंजन कार्यक्रमों के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के परंपरागत लोकनृत्य तथा लोकगीत भी प्रस्तुत किए जाएँगे।

अनिल कुमार, समन्वयक
सतेन्द्र सिंह, संयोजक
अरविंद कुमार, सह संयोजक

1857 के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की 150 वीं वर्षगांठ पर दूरदर्शन, पटना केंद्र की ओर से एक दिवसीय परिचर्चा और कविगोष्ठी

1857 ई॰ के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम की 150 वीं वर्षगांठ पर दूरदर्शन, पटना केंद्र द्वारा गत 16 मई 2007 ई॰ को दो सत्रों में "स्वतंत्रता : अर्थ और अभिव्यक्ति" विषय पर एक दिवसीय परिचर्चा और कविगोष्ठी का आयोजन केंद्र के स्टेडियो में संपन्न हुआ।

प्रथम सत्र में निर्धारित विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सुप्रसिद्ध आलोचक-कथाकार डॉ॰ अजय तिवारी ने कहा कि भूमंडलीकरण के इस दौर में राष्ट्रीय स्वतंत्रता की बजाय नागरिक स्वतंत्रता की ज़्यादा अहमियत और ज़रूरत है। जानेमाने इतिहासकार तथा ख़ुदाबख़्श ओरियंटल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना के निदेशक, डॉ॰ इम्तेयाज़ अहमद ने अपने विशेष अंदाज़ में कहा कि 1857 ई॰ की क्रांति ने ही पहली बार राष्ट्रीय भावना व राष्ट्र की व्यापक अवधारणा विकसित की। सुख्यात समाज शास्त्री डॉ॰ सच्चिदानन्द ने कहा कि आज जब हम स्वतंत्रता संग्राम की पहली लड़ाई की 150 वीं वर्षगांठ मना रहे हैं स्वतंत्रता संग्राम के बलिदानियों के सपनों के आलोक में आज के भारत को परखने की ज़रूरत है कि क्या हम सामाजिक विषमता को दूर कर सके, शोषित-पीड़ित तथा समाज के हाशिए पर खड़े दीन-दुखियों के दर्द और उसकी पीड़ा को कम कर सके और स्वतंत्र भारत में निर्धनता के अभिशाप से संतप्त जनता की दुर्दशा को दूर करने की कोशिश कर सके हैं? प्रसिद्ध अर्थशास्त्री शैवाल गुप्ता ने भी अपने विचार व्यक्त किए। ख्याति लब्ध पत्रकार विकास कुमार झा ने परिचर्चा के संचालन के क्रम में कहा कि 1857 ई॰ के विद्रोह के समय में सेनानियों ने उस समय के सारे सवालों को समेटा था।

प्रारंभ में केंद्र निदेशक एवं नामचीन कथाकार श्री शशांक ने मान्य अतिथियों का पुष्प-गुच्छ भेंट कर स्वागत करते हुए कहा कि स्वतंत्रता नैसर्गिक गुण है और यह सिर्फ़ मनुष्य को ही नहीं, संपूर्ण जीवजगत को प्रिय है।

दूसरे सत्र में विशिष्ट अतिथि डॉ॰ कमला प्रसाद ने कवियों को क्रांतिकारी चेतना के विरासत के कवि बताते हुए कहा कि आज ज़रूरत है समता पर आधारित समानता के साथ-साथ परिवर्तनकारी चेतना की आज़ादी की। स्वतंत्रता संग्राम के दिनों भी सारी हलचलों और परिवर्तनों के आंदोलनों को युगानुरूप अभिव्यक्त करने में कविता बेहतर साबित हुई है। कोलकाता से पधारे पर्यावरण के कवि एकांत श्रीवास्तव ने जहाँ ढाई आखर, लोहा, रास्ता काटना, बुनकर की मृत्यु, मृतकों से शीर्षक कविताओं को सुनाकर शराबोर किया वहीं राज कुमार केसवानी ने अपनी बाक़ी बचे लोग, वहाँ देखकर, उस गली में, मुन्ने भाई, राँग

साइड, अब तो अंदर ऊँचा है और मैं छोड़ जाऊँगा अपना सच शीर्षक कविताओं का पाठ कर श्रोताओं का मन मोहा। लखनऊ से पधारी एकमात्र कवयित्री कात्यायनी ने प्रहार करने वाली कविताओं में आज शुक्रवार का दिन है, लौटने के बारे में शीर्षक कविता सुनाने के बाद "कविताएँ बहुत नहीं लिखी जानी चाहिए।" सुनाकर श्रोताओं को आश्चर्य डाल दिया। सुप्रसिद्ध व्यंग्य कवि विष्णु नागर ने जहाँ जनतंत्र शीर्षक कविता की जनतंत्र में बकरी और शेर/ एक घाट पर पानी पीते हैं सुनाकर लोगों को लोट-पोट किया, वहीं उन्होंने सिस्टम , गदहा, फ़र्क पड़ता है आदि कविताओं का पाठ कर व्यवस्था पर चोट की। बहुत कम लिखकर अधिक यश पाने वाले कवि आलोक धन्वा ने भी अपनी कई कविताएँ सुनाकर लाहौर की घटना को ताज़ा किया। सुप्रसिद्ध कवि अरुण कमल ने मातृभूमि, घोषणा, स्वप्न तथा ज़िंदाबाद शीर्षक कविताओं का पाठ कर आयोजन की सार्थकता प्रदान की। कवि राजेश जोशी ने मैं झुकता हूँ, ताक़त और तरकीब, पीठ की खुजली, इत्यादि तथा बिल्लयाँ शीर्षक कविताएँ सुनाते हुए कहा कि कवि को भाषा इस्तेमाल करना बिल्लियों से सीखना चाहिए। जिस तरह बिल्ली अपने नवजात बच्चा को दाँतों से दबाकर एक जगह से दूसरी जगह ले जाती है, परंतु बच्चे को कोई नुक़सान नहीं पहुँचाती। कवि को भी इसी तरह भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए। वाराणसी से पधारे पटना के ज्ञानेन्द्र पति ने गणतंत्र दिवस, आज़ादी उर्फ़ गुलामी शीर्षक कविताओं का पाठ किया। कविगोष्ठी का संचालन करते हुए कवि नरेश सक्सेना ने 'इस बारिश में', 'अच्छे बच्चे', 'दाग़-धब्बे', 'समुद्र पर बारिश' कविताएँ सुनाकर कार्यक्रम की प्रासंगिकता को सार्थक बनाया। कार्यक्रम के संचालन के क्रम में उन्होंने कहा कि जिसकी कोई ज़मीन नहीं होती उसका कोई आसमान नहीं होता।

जिन साहित्यिक व्यक्तित्वों ने अपनी उपस्थिति से आयोजन की गरिमा बढ़ायी उनमें डॉ॰ जितेन्द्र सहाय, कवि सत्यनारायण, 'विचार दृष्टि' के संपादक सिद्धेश्वर, उप संपादक डॉ॰ शाहिद जमील, नाशाद औरंगाबादी, आलम खुर्शीद, डॉ॰ क़ासिम खुर्शीद, डॉ॰ शांति जैन, श्रीमती उषा किरण ख़ान, आनंद किशोर शास्त्री, पी॰के॰ सिन्हा, एस॰एम॰ हैदर, अजय कांत शर्मा, हृषीकेश सुलभ, डॉ॰ जी॰एल॰ कनौजिया, चंद्र प्रकाश माया, हसन नवाब एवं मधुकर सिंह आदि उल्लेखनीय हैं।

– डॉ॰ शाहिद जमील

दक्षिण में उभरती जा रही है हिंदी – डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी

'राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा के रूप में हिंदी' विषयक संगोष्ठी

दक्षिण में हिंदी उभरती जा रही है और आज हिंदी विश्व के अनेक देशों में फल-फूल रही है। हम आत्मविश्वास से काम करेंगे, तो हिंदी और मज़बूत होगी और विश्व की श्रेष्ठ भाषा बन जाएगी। ये उद्‌गार हैं तामिलनाडु हिंदी अकादमी के अध्यक्ष तथा 'विचार दृष्टि' के परामर्शी डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी के, जिसे पिछले दिनों दक्षिण रेलवे प्रधान कार्यालय राजभाषा संगठन की ओर से आयोजित एक कार्यशाला में 'राष्ट्रभाषा, राजभाषा, जनभाषा के रूप में हिंदी' विषय पर मुख्य अतिथि के रूप में उन्होंने व्यक्त किए।

इस अवसर पर संत स्ट्रेला मैरिस कॉलेज की हिंदी विभागाध्यक्ष तथा 'राष्ट्रीय विचार मंच' तमिलनाडु इकाई की अध्यक्ष डॉ॰ मधु धवन ने 'अनुवाद के सिद्धांत एवं स्वरूप' विषय पर प्रकरश डालते हुए कहा कि अनुवाद आज से नहीं, बल्कि जब से सृष्टि की रचना हुई तब से है। आज के तकनीकी युग में हर दूसरे दिन नई बात होती है। हम एक भाषा में कही गई बात को अनुवाद के माध्यम से दूसरी भाषा में फिर से कह सकते हैं। हमें शब्दकोश देखकर केवल शब्दों का भाव प्रकट करना चाहिए न कि अनुवाद। दूसरी भाषाओं के केवल प्रचलित शब्दों को हम अनुवाद में इस्तेमाल कर सकते हैं।

दक्षिण भारत प्रचार सभा की उच्च शिक्षा शोध संस्थान की अध्यक्ष डॉ॰ निर्मला एस॰ मौर्य ने 'अनुवाद विज्ञान है कला या शिल्प नहीं' विषय पर विस्तृत जानकारी दी। केंद्रीय हिंदी निदेशालय के उप निदेशक डॉ॰ वी॰ नारायणन ने 'कार्यालयीन अनुवाद : व्यावहारिक पक्ष' पर प्रकाश डाला। राजभाषा अधिकारी, श्रीमती माहेश्वरी रंगनाथन ने प्रतिवेदन प्रस्तुत किया तथा अंत में आभार व्यक्त किया। प्रारंभ में उप मुख्य राजभाषा अधिकारी श्रीमती राध ारामकृष्णन ने संगोष्ठी की पृष्ठभूमि प्रस्तुत

डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी स्वागत भाषण करते हुए

करते हुए अतिथियों का स्वागत किया। इस अवसर पर 'हिंदी द्वारा तमिल सीखें' पुस्तिका का लोकार्पण समारोह के अध्यक्ष मुख्य राजभाषा अधिकारी मनोज कुमार ने किया।

– डॉ॰ एस॰ निर्मला मौर्य, चैन्नई से

चेन्नई में स्वतंत्रता सेनानी एवं सृजनकर्मी सम्मान समारोह

दक्षिण भारत हिंदी प्रतिष्ठान, हैदराबाद, तमिलनाडु हिंदी अकादमी, चेन्नई, तमिलनाडु बहुभाषी संघ, चेन्नई तथा स्टेला मैरिस कॉलेज के संयुक्त तत्त्वावधान में पिछले दिनों चेन्नई में आयोजित स्वतंत्रता सेनानी एवं सृजनकर्मी सम्मान समारोह के अब बदला है और वे हिंदी सीखने एवं समझने में रुचि लेने लगे हैं। तमिलनाडु के मुख्यमंत्री डॉ॰ के॰ करुणानिधि की भावना में भी हिंदी के प्रति विरोध जैसी कोई बात अब नज़र नहीं आती। यह स्थिति हमारे लिए काफ़ी संतोषप्रद है। उन्होंने इस

अध्यक्षीय भाषण में कर्नाटक के पूर्व मुखमंत्री तथा दक्षिण भारत हिंदी प्रतिष्ठान, हैदराबाद के अध्यक्ष धरम सिंह ने कहा कि दक्षिण भारतीय लोगों का हिंदी के प्रति नज़रिया अवसर पर कई पुस्तकों का लोकार्पण भी किया।

स्टेला मैरिस कॉलेज के हीरक जयंती वर्ष पर आयेजित इस समारोह के मुख्य अतिथि तथा उत्तर प्रदेश के पूर्व राज्यपाल डॉ॰ बी॰ सत्यनारायण रेड्डी ने कहा कि तमिलनाडु के लोग हिंदी विरोधी नहीं, बल्कि हिंदी प्रेमी हैं। विशिष्ट अतिथि काट्म लक्ष्मीनारायण तथा रत्नाकर पाण्डेय ने भी इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त किए। प्रारंभ में डॉ॰ बाल शौरि रेड्डी ने समारोह के मान्य अतिथियों का स्वागत किया तथा तमिलनाडु हिंदी अकादमी की कार्यवाहक अध्यक्ष डॉ॰ मधु धवन ने समारोह की पृष्ठभूमि प्रस्तुत की तथा अकादमी के महासचिव ईश्वर करुण ने आभार व्यक्त किया। इस समारोह में विशिष्ट अतिथि हिंदी प्रचारकों, अनुवादकों, राजभाषा अधिकारियों, शिक्षाविदों, समाजसेवियों के अतिरिक्त हिंदी के क्षेत्र में उल्लेखनीय सेवाएँ अर्पित करने वालों को सम्मानित किया गया।

–डॉ॰ मधु धवन,
चेन्नई से

"भाषाविद् रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव : एक पुनरावलोकन" विषयक राष्ट्रीय संगोष्ठी संपन्न

दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के विश्वविद्यालय विभाग, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान के ख़ैरताबाद स्थित सम्मेलन कक्ष में 31 मार्च और 1 अप्रैल, 2007 को दो दिवसीय राष्ट्रीय संगोष्ठी 'भाषाविद् रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव : एक पुनरावलोकन' का आयोजन किया गया। संगोष्ठी का उद्घाटन संस्थान के कुलपति तथा आंध्र प्रदेश सरकार के सलाहकार सी॰सी॰ रेड्डी ने किया। उन्होंने उद्घाटन भाषण में कहा कि भाषा मनुष्य को प्राप्त एक ऐसा वरदान है जिसके माध्यम से वह अपनी भावनाओं को अन्य जीवधारियों की अपेक्षा अधिक सटीक ढंग से अभिव्यक्त कर पाता है। भाषा के मूल में शब्द और शब्दों के मूल में मनोभाव निहित होती है। सी॰सी॰ रेड्डी ने यह प्रश्न भी उठाया कि आधुनिक संदर्भ में हिंदी और हिंदी और तेलगु आदि भाषाओं का विस्तार और विकास किस प्रकार किया जा सकता है। इसके लिए उन्होंने अन्य भाषाओं से शब्द ग्रहण की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। उन्होंने भारतीय बहुभाषिकता की विशिष्टता की भी चर्चा की तथा वैश्विक संदर्भ में एक सर्वसमावेशी प्रारूप वाली ऐसी भाषा की आवश्यकता बताई जिसमें व्याकरण से परे नई अभिव्यक्ति को सर्वत्र एक जैसा व्यक्त कि जा सके। इसके साथ उन्होंने राष्ट्रीयता एकता के प्रतीक के रूप में अंगीकार करने का भी आह्वान किया।

इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में बोलते हुए तेलुगु विश्वविद्यालय के भाषा विकास विभाग के पूर्व निदेशक प्रो॰ रामकृष्ण रेड्डी ने भाषा वैज्ञानिक डॉ॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की मौलिकता पर प्रकाश डालते हुए कहा कि उन्होंने रूसी पद्धति से भाषाओं का विश्लेषण किया तथा व्यावहारिकता पर सबसे अधिक बल दिया। डॉ॰ रामकृष्ण रेड्डी ने आह्वान किया कि श्रीवास्तव से प्रेरणा लेकर हमें आदिवासी भाषाओं पर अनुसंधान करके क्षेत्रों के लिए पाठ्यपुस्तकें तैयार करनी चाहिए जहाँ अभी तक अशिक्षा व्याप्त है। आंध्र सभा के अध्यक्ष कोम्मा शिवशंकर रेड्डी ने मुख्य अतिथि के रूप में बोलते हुए कहा कि श्रीवास्तव उन विरले विद्वानों में से एक हैं जिन्होंने भाषा विज्ञान और साहित्य चिंतन को एक साथ साधकर दिखाया है। आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में श्रीवास्तव का स्थान अद्वितीय है और वे हम सबके लिए गुरु तुल्य हैं।

गोष्ठी का विषय पर्वतन करते हुए केंद्रीय अँग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा संस्थान के रूसी विभाग के प्रो॰ जे॰पी॰ डिमरी ने बीज भाषण देते हुए कहा कि श्रीवास्तव से बड़ा मेधावी भाषाविद् हिंदी क्षेत्र में नहीं हैं। उन्होंने रूसी विद्वानों के साहित्य और भाषाविषयक चिंतन से हिंदी जगत को पहले-पहल परिचित कराया। अत: उनके प्रति सच्चा सम्मान यही है कि हम देश-विदेश के तमाम भाषिक चिंतन को अपनी भाषाओं में लाएँ और उसे अपने साहित्य पर घटित करके दिखाएँ जैसा कि श्रीवास्तव ने किया है।

संगोष्ठी के संरक्षक प्रो॰ दिलीप सिंह ने संगोष्ठी के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा कि प्रो॰ श्रीवास्तव के लेखन के आकलन के माध्यम से यह संगोष्ठी भारतीय भाषाओं, विशेषकर हिंदी के अध्येताओं को गंभीर-चिंतन मनन की प्रेरणा देने के लिए आयोजित की गई है।

उद्घाटन सत्र की अध्यक्षता केंद्रीय हिंदी संस्थान के क्षेत्रीय निदेशक प्रो॰ टी॰के॰एन॰ पिल्लै ने की। उन्होंने प्रो॰ श्रीवास्तव के साथ बिताए समय को याद करते हुए कहा कि वे अत्यंत निश्छल व्यक्तित्व के धनी थे। उनका सारा चिंतन वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तार्किकता से युक्त है।

उद्घाटन सत्र के आरंभ में अतिथियों ने वाग्देव और प्रो॰ रवीन्द्र श्रीवास्तव के चित्र पर माल्यार्पण और दीप प्रज्वलन किया तथा अनुराधा जैन ने मंगलाचरण किया। आंध्र सभा के सचिव शीर्ल धनंजयुडु ने पुष्पगुच्छ और शॉल प्रदान कर अतिथियों का सत्कार किया।

संगोष्ठी के निदेशक प्रो॰ ऋषभदेव शर्मा ने इस अवसर पर प्राप्त दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा के अध्यक्ष और भारत सरकार के योजना राज्य मंत्री एम॰वी॰ राजशेखरन, संस्थान के समकुलपति आर॰एफ॰ नीरलकट्टी, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष सुखदेव थोरात, भाषाविज्ञानी प्रो॰ सूरजभान सिंह, भारतीय भाषा संस्थान के निदेशक प्रो॰ उदय नारायण सिंह, दक्षिण भारत के प्रमुख भाषा भाषाचिंतक डॉ॰ एन॰ई॰ विश्वनाथन तथा श्रीमती बीना श्रीवास्तव (जेनेवा, स्विट्जलैंड) के संदेशों का वाचन किया, जिनमें प्रो॰ श्रीवास्तव के दक्षिण भारत के प्रति विशेष लगाव को रेखांकित किया गया।

इस अवसर पर डॉ॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की अब तक की अप्रकाशित कविताओं के संकलन 'अचानक की एक मुलाक़ात' को भी सी॰सी॰ रेड्डी ने लोकार्पित किया। इस पुस्तक का संपादन संस्थान के कुलसचिव प्रो॰ दिलीप सिंह ने किया है। लोकार्पित पुस्तक पर समीक्षात्मक टिप्पणी करते हुए डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा ने कहा कि रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की कविताएँ विषयवस्तु, भाषा, वैचारिकता और कल्पना दृष्टि से सर्वथा मौलिक और निजी शिल्प की खोज की कविताएँ हैं।

गोवा विश्वविद्यालय से पधारे डॉ॰ बालकृष्ण शर्मा 'रोहिताश्व' ने 'अचानक की एक मुलाक़ात' की समीक्षा करते हुए कहा कि इन कविताओं में निहित शब्दचित्र पेंटिंग के समान हैं तथा कवि ने एक-एक शब्द तराश कर जौहरी की तरह अपने शैलीगत कौशल का परिचय दिया है। श्रीवास्तव की कविताएँ मुक्तबोध, शमशेर और धर्मवीर भारती की कविताओं से तुलनीय हैं।

प्रथत विचार सत्र डॉ॰ दिलीप सिंह की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। इस सत्र का विषय था 'प्रो॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की स्मृति'। दिल्ली से पधारे डॉ॰ हीरालाल बाछोतिया ने श्रीवास्तव को द्वितीय भाषा शिक्षा के जागरूक प्रहरी बताया, तो केंद्रीय हिंदी संस्थान के पूर्व प्रभारी डॉ॰ विजयराघवन रेड्डी ने उनके भाषा प्रेमी व्यक्तित्व के विविध आयामों की चर्चा की। डॉ॰ टी॰के॰एन॰ पिल्लै ने श्रीवास्तव को शैलीविज्ञान के आलोचक की संज्ञा दी। अध्यक्षीय भाषण में प्रो॰ दिलीप सिंह ने डॉ॰ श्रीवास्तव के व्यक्तित्व और कृतित्व की एकाकारता की चर्चा करते हुए बताया कि वे इतने निश्छल थे कि पहली ही मुलाक़ात में हर किसी को अपना बना लेते थे तथा इसीलिए वे भाषा और साहित्य के विद्वानों को जोड़ने

और पढ़ने-लिखने वालों की जमात तैयार करने में सफल हो सके। उनके मतानुसार भाषा चेतना ही सर्व प्रमुख है। इस सत्र का संचालन डॉ॰ निर्मला एस॰ मौर्य ने किया।

दूसरे विचार सत्र में प्रो॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की छः कालजयी कृतियों पर विवेचनात्मक आलेख प्रस्तुत किए गए। इंदिरागाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय की डॉ॰ स्मिता चतुर्वेदी ने 'भाषाई अस्मिता और हिंदी', उच्च शिक्षा और शोध संस्थान मद्रास केंद्र की अध्यक्ष प्रो॰ निर्मला एस॰ मौर्य ने 'हिंदी भाषा संरचना के विविध आयाम', डॉ॰ अनीता गांगुली ने 'भाषा शिक्षण', डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा ने 'संरचनात्मक शैलीविज्ञान' और डॉ॰ एम॰ वेंकटेश्वर ने 'अनुवाद सिद्धांत और समस्याएँ' जैसी श्रीवास्तव की अमर भाषावैज्ञानिक कृतियों पर चर्चा की। इस सत्र की अध्यक्ष डॉ॰ शकुंतला रेड्डी ने प्रो॰ श्रीवास्तव को भारतीय और पाश्चात्य भाषाविज्ञान के जीवंत सेतु की संज्ञा दी।

दूसरे दिन के प्रथम सत्र में 'प्रो॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव की भाषाई चेतना' के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हुए डॉ॰ दिलीप सिंह, डॉ॰ शकुंतला रेड्डी, डॉ॰ जे॰पी॰ डिमरी तथा डॉ॰ नारायण राजू ने आलेख प्रस्तुत किए। अध्यक्षता डॉ॰ हीरालाल बाछोतिया ने की तथा संचालन डॉ॰ अमर ज्योति ने किया।

इसी प्रकार 'प्रो॰ रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव सर्जनात्मकता' पर केंद्रित अंतिम विचारसत्र में डॉ॰ मल्लसर्ज मंगोडी ने उनके संस्मरणों तथा डॉ॰ अमर ज्योति ने कविताओं पर समीक्षा प्रस्तुत की। सत्र की अध्यक्षता डॉ॰ विजयराधव रेड्डी और संचालन डॉ॰ साहिराबानो बी॰ बोरगल ने किया।

दो दिनों तक चली इस भाषावैज्ञानिक संगोष्ठी के समापन समारोह में मुख्य अतिथि रहे केंद्रीय अँग्रेज़ी एवं विदेशी भाषा संस्थान के आचार्य डॉ॰ प्रकाशम। उन्होंने कहा कि श्रीवास्तव की भाषाविशलेषण पद्धति अमरीकी विद्वानों की अपेक्षा गहन विवेचन करने की है जिसका अभ्यास उन्होंने अपने रूसी प्रवास के काल में किया था। वह एक 'सुपर लिंग्विस्ट' थे, क्योंकि उन्होंने भारतीय, रूसी और अमरीकी भाषाचिंतन को आत्मसात करके अपने सिद्धांतों का प्रणयन किया था।

समापन सत्र के अध्यक्ष प्रो॰ दिलीप ने कहा कि श्रीवास्तव मानते थे कि भाषा का विकास सभी भारतीयों का सामूहिक दायित्व है और इसीलिए उन्होंने जहाँ एक ओर दक्षिण के हिंदी प्रचारकों को व्यापक समर्थन और संरक्षण दिया वहीं, दूसरी तथा तीसरी ओर भाषाचिंतन को कंप्यूटर, प्राद्योगिकी, सामासिक संस्कृति और संचार माध्यमों के साथ भी जोड़कर अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दिया।

आंध्र सभा के अध्यक्ष कोम्मा शिवशंकर रेड्डी ने कहा कि दक्षिण में हिंदी शिक्षण के कार्य को वैज्ञानिक रूप प्रदान करने में श्रीवास्तव के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि निहित है। डॉ॰ स्मिता चतुर्वेदी और डॉ॰ एम॰ वेंकटेश्वर ने कहा कि यह संगोष्ठी भाषा अध्ययन के प्रति जागरूकता उत्पन्न करने में पूर्ण सफल रही है। डॉ॰ हीरालाल बाछोतिया ने कहा कि इस संगोष्ठी से यह बात उभर कर सामने आई है कि श्रीवास्तव ने हिंदी भाषिकी को विश्व भाषाओं की टक्कर में लाने का जो काम शुरू किया था उसे आगे बढ़ाने के लिए दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा में पर्याप्त अनुकूल वातावरण है।

दो दिन के इस आयोजन में संस्थान के एम॰एम॰, एम॰फिल॰, पीएच॰डी॰ तथा अनुवाद और पत्रकारिता आदि विभिन्न पाठ्यक्रमों के विद्वानों के विद्यार्थियों ने उत्साहपूर्वक भाग लिया। साथ ही नगरद्वय के हिंदी विद्वान, प्राध्यापक, राजभाषा अधिकारी, साहित्यकार और पत्रकार भी बड़ी संख्या में उपस्थित रहे। अंत में चवाकुल नरसिंह मूर्ति ने तेलुगु कविता का वाचन किया। संगोष्ठी निदेशक ने सबके प्रति आभार प्रकट किया तथा राष्ट्रगान के साथ यह कार्यक्रम समाप्त हुआ।

– डॉ॰ ऋषभदेव शर्मा,
हैदराबाद से

साहित्य संध्या में सिद्धेश्वर की पुस्तक पर चर्चा

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी तथा 'विचार दृष्टि' के यशस्वी संपादक सिद्धेश्वर शरीर से ज्यादा मन से सिद्ध और जीवन के उतार-चढ़ाव से अडिग आत्मविश्वास से भरे एक ऐसे निष्ठावान समाज व साहित्य सेवी हैं जिनके जीवन का उद्देश्य है एक स्वस्थ समाज एवं सबल राष्ट्र का निर्माण। ये उद्गार हैं इंद्रप्रस्थ साहित्य भारती के अध्यक्ष डॉ. देवेन्द्र आर्य के, जिसे नई दिल्ली के राजेन्द्र भवन में राष्ट्रीय विचार मंच एवं 'विचार दृष्टि' के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित एक साहित्य संध्या में उन्होंने व्यक्त किए। पटना विश्वविद्यालय के पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष तथा ख्यातिलब्ध साहित्यकार प्रो. राम बुझावन सिंह की सद्यप्रकाशित पुस्तक 'सिद्धेश्वर : व्यक्तित्व और विचार' तथा मंच के राष्ट्रीय महासचिव सिद्धेश्वर की अद्यतन कृति 'समकालीन यथार्थ बोध' पर चर्चा के लिए आयोजित इस साहित्य संध्या के मुख्य वक्ता डॉ. आर्य ने कहा कि देश व समाज के सभी मुद्दों पर अपनी धारदार कमल चलाने में माहिर सिद्धेश्वर जी हारने के लिए पैदा नहीं हुए, बल्कि लक्ष्य पर निरंतर बढ़ते हुए इन्होंने कभी पीछे मुड़कर नहीं देखा। लखनऊ से पधारे समारोह के मुख्य अतिथि, सांसद तथा पूर्व केंद्रीय संचार मंत्री बेनी प्रसाद वर्मा ने भी इस अवसर पर अपने विचार व्यक्त करते हुए सिद्धेश्वर जी की कृतियों तथा इनके व्यक्तित्व से सीख लेकर अपने में सुधार लाने की बात कही। साहित्य संध्या के उद्घाटनकर्ता तथा दिल्ली विकास प्राधिकरण के सदस्य (वित्त) नंद लाल ने महाभारत से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए कहा कि सिद्धेश्वर जी ने हमेशा अपने पुरुषार्थ का सही उपभोग किया है, इसलिए ये प्रेरणा के स्रोत हैं।

अपने अध्यक्षीय भाषण में दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी प्राध्यापक डॉ. राजेन्द्र गौतम ने लेखक सिद्धेश्वर के साथ जुड़े अपने एक दशक में संबंधों को बड़े मार्मिक ढंग से पेश करते हुए कहा कि इनके जीवन पर आधारित तथा इनके द्वारा प्रणीत पुस्तकें उनकी साहित्य साधना का अनन्यतम उपहार और मानवता का उच्चतम पुरस्कार है, क्योंकि इनमें न केवल इनके अनुभव, बल्कि जीवन जगत से संबंधित इनके प्रगाढ़ चिंतन दृष्टिगोचर होते हैं।

इस अवसर पर प्रो. धर्मेन्द्र नाथ अमन ने अपने उद्गार व्यक्त करते हुए कहा कि प्रस्तुत पुस्तक के जरिए सिद्धेश्वर जी ने अंकों से अक्षर तक के अपने जीवन सफर में अतीत को याद रखने के साथ-साथ समाज, साहित्य, संगठन तथा पत्रकारिता के प्रति अपनी प्रतिबद्धता कायम रखी है, जो सराहनीय है। राजधानी कॉलेज के पूर्व हिंदी प्राध्यापक डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव ने सिद्धेश्वर के व्यक्तित्व की विशेषताओं को रखते हुए इनके समय प्रबंधन, सर्वत्र मौजूदगी, साहित्य सहित राजनीति में अच्छी पकड़, सामाजिक चिंतन तथा लेखन, पत्रिका एवं संस्था के प्रति अपनी जिम्मेदारियों की मुक्त कंठ से चर्चा की।

अपने लेखकीय वक्तव्य में सिद्धेश्वर जी ने सभी अतिथियों, विद्वान वक्ताओं तथा सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करते हुए कहा कि उनकी समझ से जिसने आज के इस भौतिकवादी युग में भी सही रास्ते पर चलकर सीधी-सादी जीवन पद्धति अपना ली हो या जो निष्ठा एवं ईमानदारी से समाज व राष्ट्र के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन कर रहा हो उसका भी जादू होता है और वह सिर चढ़कर बोलता है। लेखक के प्रति जिन सुधीजनों ने अपनी शुभकामनाएँ प्रकट करते हुए उन्हें दीर्घायु होने की कामना की उनमें कर्नल एस एन कटियार, अरविंद कुमार, सत्येन्द्र सिंह, अजय कुमार, प्रो. पी.के. झा 'प्रेम', डॉ. मेहिनी राय आदि नाम उल्लेखनीय है। प्रारंभ में जहाँ मंच की दिल्ली इकाई के अध्यक्ष डॉ. सोम दत्त शर्मा 'सोम' ने मान्य अतिथियों का स्वागत किया, वहीं सचिव संजय सौम्य ने आभार व्यक्त किया। मंच के महासचिव उदय कुमार 'राज़' ने अपने ओजपूर्ण शेरो-शायरी से कार्यक्रम का सफल संचालन कर इसे जीवंत बनाया।

पुस्तक लोकार्पण-सह सम्मान समारोह संपन्न

अपने समय, समाज और जीवन के जद्दोजहद से निकलकर अथा उसमें जूझते-भिड़ते साहित्यकार समाज को न केवल एक नई दिशा देते, बल्कि समाज के बिगड़े माहौल में एक वातावरण का निर्माण करते हैं। 15 अप्रैल, 2007 ई॰ को बेतिया जिला के महाराजा पुस्तकालय के सभागार में 'शैल शिखर विचार मंच' तथा ऐवाने अशरफ़ के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित पुस्तक लोकार्पण-सह-सम्मान समारोह में प॰ चंपारण के अपर समाहर्ता मो॰ सुलेमान के ग़ज़ल-संग्रह 'बादलों के साये तले' और केविता-संग्रह 'सृजन' के द्वितीय संशोधित संस्काण का लोकार्पण करते हुए समारोह के मुख्य अतिथि मिहिर कुमार सिंह, जिला पदाधिकारी ने उक्त उद्‌गार व्यक्त किए। 'सृजन' का लोकार्पण करते हुए 'विचार दृष्टि' के संपादक तथा समारोह के मुख्य अतिथि सिद्धेश्वर ने कहा कि मौजूदा दौर में समाज के प्राय: सभी क्षेत्रों में राष्ट्रीयता की भावनाओं का लोप होते जाने पर जहाँ चिंता प्रकट की, वहीं ऐसे माहौल में समाज के सजग एवं संवेदनशील लोगों का स्वरूप सबल राष्ट्र के निर्माण के लिए अपने सामाजिक एवं राष्ट्रीयता का निर्वहन समय की माँग है। विशिष्ट अतिथि, कथाकार तथा 'विचार दृष्टि' के उप संपादक डॉ॰ शाहिद जमील ने कहा कि फ़नकार हमेशा आम आदमी से अलग होता है। जिस तरह जिस्म के किसी भी हिस्से में दर्द हो और दिल किसी भी घटना-दुर्घटना से आहत हो, रोती हैं आँखें। ख़ंजर चले किसी पे तड़पे हैं हम 'अमीर' सारे जहाँ का दर्द गोया हमारे जिगर में है उन्होंने कहा कि मो॰ सुलेमान का दिल एक फ़नकार है। इसीलिए उनकी शायरी में आम आदमी की वेदना-संवेदना है। अगर कोई व्यक्ति यह जानना चाहे कि सरकारी एवं पारिवाकि दायित्वों के निर्वहन के साथ-साथ साहित्यसेवा कैसे की जा सकती है, तो उसे तलाश में भटकने की ज़रूरत नहीं। वह मो॰ सुलेमान के साथ एक सप्ताह गुराज़ ले। विशिष्ट अतिथि तथा उप विकास आयुक्त राधा मोहन ने अपनी शुभकामनाएँ व्यक्त करते हुए मो॰ सुलेमान के साहित्य-कर्म पर भी प्रकाश डाला। सुख्यात वरिष्ठ कवि-साहित्यकार विमल राजस्थानी ने मो॰ सुलेमान के संदर्भ में व्यक्त बातों के अहम बिंदुओं को रेखांकित करते हुए उनके व्यक्तित्व-कृतित्व पर विस्तारपूर्वक समीक्षा करते हुए कई कविताओं-ग़ज़लों की भरपूर सराहना की।

'शैल शिखर विचार मंच' तथा 'ऐवाने अशरफ़' द्वारा साहित्यकार-पत्रकार सिद्धेश्वर एवं डॉ॰ शाहिद जमील को संगठन, साहित्य तथा पत्रकारिता के क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान के लिए उन्हें शाल एवं प्रशस्ति-पत्र प्रदान कर समारोह में सम्मानित किया गया।

एक भव्य कवि सम्मेलन-सह-मुशायरा के समापन के बाद क़रीब साढे दस बजे रात में धन्यवाद-ज्ञापन के साथ समापन की घोषणा की गई। नगर के साहित्यकारों एवं प्रबुद्धजनों ने अपनी उपस्थिति से इस समारोह को गरिमा प्रदान की।

–महासचिव
राष्ट्रीय विचार मंच,
जिला शाखा बेतिया से

दिलीप कुमार फालके रत्न से सम्मानित

भारतीय फ़िल्म जगत के संस्थापक दादा साहब फालके की 138 वीं जयंती के अवसर पर फ़िल्म निर्माता एस॰ चोपड़ा और मुंबई के मेयर डॉ॰ शोभारावल के कर कमलों द्वारा मुंबई में विगत 30 अप्रैल को शहंशाहे जज़्बात दिलीप कुमार को 'फालके रत्न अवार्ड' से पुरस्कृत-सम्मानित किया गया। यह सम्मान अब तक कुल 33 व्यक्तित्वों को प्रदान किया जा चुका है।

बिंदेश्वर पाठक को इंदिरा गाँधी पर्यावरण पुरस्कार

विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर आयोजित एक समारोह में विदेश मंत्री, प्रणव मुखर्जी ने सुख्यात सामाजिक कार्यकर्ता डॉ॰ बिंदेश्वर पाठक को पर्यावरण के क्षेत्र के सर्वोच्च पुरस्कार 'इंदिरा गाँधी पर्यावरण पुरस्कार' से पुरस्कृत-सम्मानित किया गया।

थरूर को प्रवासी भारतीय सम्मान

संयुक्त राष्ट्र के उप महासचिव शशि थरूर को प्रवासी भारतीयों को दिया जाने वाला सबसे बड़ा पुरस्कार भारतीय सम्मान से अमेरिका में राजदूत रोनेन सेन द्वारा वाशिंगटन में सम्मानित किया गया।

श्रीनिवास वर्धन को अबेल पुस्कार

भारतीय मूल के अमेरिकी गणितज्ञ श्रीनवास वर्धन को गणित में संभाव्यता सिद्धांत पर उनके विशेष कार्य के लिए गणित का नोबेल कहे जाने वाले 'अबेल पुरस्कार' से विज्ञत 22 मई को ओस्इरालो पंचम द्वारा सम्मानित किया गया। ज्ञातव्य है कि गणित में नोबेल पुरस्कार नहीं दिया जाता है।

मनीष सी.बी.एस.ई. की परीक्षा में प्रथम

केन्द्रीय बोर्ड ऑफ सेकेन्ड्री एजुकेशन (दसवीं) (सी.बी.एस.ई.) की परीक्षा में बिहार की राजधानी पटना स्थित ज्ञान निकेतन के मनीष कुमार ने 97.8 प्रतिशत अंक प्राप्त कर पूरे भारत में प्रथम स्थान पाया है। इसी तरह अति साधारण परिवार के प्रशांत सुमन, रोबिन

मनीष कुमार

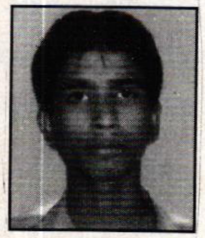

प्रशांत सुमन

कुमार तथा राजीव रंजन ने भी उसी स्कूल से 98 प्रतिशत से उपर अंक प्राप्त कर क्रमशः तीसरा, चौथा तथा पाँचवाँ स्थान पर बिहार का नाम रौशन किया है। इसके अतिरिक्त अनेक विद्यार्थियों ने 95 प्रतिशत से ऊपर अंक प्राप्त कर उल्लेखनीय सफलता हासिल की है। 'विचार दृष्टि' परिवार की ओर से इन सफल छात्र-छात्राओं को हार्दिक बधाई।

–शिव कुमार, पटना से

येल्तसिन नहीं रहे

एक व्यक्तित्व के रूप में आजीवन विराधाभासों का केंद्र बने रहने वाले रुस के पूर्व राष्ट्रपति और एक महान लोकतांत्रिक नेता बोरिस निकोलाइएक्च येल्तसिन का गत 23 अप्रैल, 2007 ई॰ को दिल का दौरा पड़ने से निधन हो गया। वे रूस के पहले राष्ट्रपति थे, जिन्होंने सोवियत साम्राज्य को ढहा दिया था, किंतु जिनके राज्य में रुस लगभग अराजकता की स्थिति में ही रहा, हालांकि वे लोकतंत्र के कट्टर समर्थक थे या उन्हें इतिहास ने सिर्फ़ उस भूमिका में ढकेल दिया था। वे एक साइबेरियन ग्रामीण नेता थे और ज़िंदगी भर रहे। दुस्साहस और जुझारुपन उनके चरित्र में था और ये गुण गोर्वाचोव के तख़्ता पलट को असफल करने के पहले भी उन्होंने दिखाए थे।

यद्यपि उनके राष्ट्रपति रहते हुए रूस में लगातार गृह युद्ध जैसे हालात रहे, लेकिन वह ऐसे नेता थे जो दिमाग़ से ज़्यादा दिल से काम लेते थे और वही करते रहे जो उनकी नज़र में रूस के लिए सही था। इतिहास हर वक़्त सही आदमी को सही जगह नहीं रखता। इतिहास के नाटकियताबोध का यह ज़रूरी हिस्सा है। येल्तसिन जहाँ षड्यंत्र को विफल करने के लिए सही व्यक्ति थे, वहीं उसके बाद जटिल परिस्थितियों में रूस को सही दिशा दिखाने के लिए ग़लत व्यक्ति थे। फिर भी उनके संबंध में यह तो कहना ही होगा कि उन्होंने लोकतंत्र की यथासंभव रक्षा की।

सन् 1931 में एक खुशहाल परिवार में जन्मे येल्तसिन 12 जून 1991 ई॰ को सार्वजनिक मताधिकार के आधार पर रूस के राष्ट्रपति चुने गए और 31 दिसंबर 1999 को अपना राजपाट व्लादिमिर पुतिन को सौंपते हुए उन्होंने रूसी जनता से कहा था, "में आपसे उनके लिए क्षमा माँगता हूँ जो कभी सच साबित नहीं हुए। आपकी उम्मीदों पर खरा नहीं उतरा, इसके लिए भी क्षमा प्रार्थी हूँ।" ख़ैर जो हो सोवियत संघ्र बिखराव के पटकथाकार येल्तसिन अब नहीं रहे, लेकिन उनको नायकोचित वीरता और साहस के अमिट क्षणों के लिए सदैव याद किया जाएगा।

– सहायक संपादक, दिल्ली से

बिहार के मुख्यमंत्री की पत्नी मंजू का निधान

बिहार के मुख्य मंत्री नीतीश कुमार की पत्नी मंजू सिन्हा का विगत 14 मई 2007 को नई दिल्ली के मैक्स हस्पताल में निधन हो गया। निमोनिया और फेफड़ों में संक्रामण रोग के बेहतर इलाज के लिए उन्हें दिल्ली ले जाया गया, वहाँ वह जीवनांत तक वेंटिलेटर पर थीं। कभी-कभी दुआएँ अपना असर नहीं दिखा पातीं। यद्यपि मंजू की सेहतयाबी के लिए बेशुमार हाथ दुआ के लिए उठाए गए थे। अंतिम समय तक नीतीश कुमार हर तरह से पत्नी-सेवा में लगे रहे। इस मामले में भी उन्होंने एक मिसाल क़ायम की है। उनका अंतिम संस्कार बिहार की भूमि में ही किया गया। मुख्य मंत्री निवास पर उनके पार्थिव शरीर को दर्शनार्थ रखा गया और दोपहर बाद गंगा नदी के पहलवान घाट पर पुत्र ने माँ को मुखाग्नी दी। सवर्गीय मंजू आदर्श शिक्षिका और खुद्दार नारी के रूप में अनुसरणीय एवं प्रशंसनीय रहेंगी। 'विचार दृष्टि' परिवार उनके प्रति विशेष सम्मान व्यक्त करते हुए मुख्य मंत्री नीतीश कुमार और उनके पुत्र के दुखों में खुद को शरीक महसूस करता है।

तुम में जीकर मीत
ज्योति के गीत लिखे हैं मैंने
विष पीकर सुर में गाए हैं
गीत अमृत के मैंने।

–उदय कुमार 'राज़' दिल्ली से

उपन्यास कार कुर्त वोनेगट का निधन

मशहूर उपन्यासकार कुर्त वोनेगट का विज्ञत 11 अप्रैल, 2007 को 84 वर्ष की उम्र में निधन हो गया। उन्होंने 'स्लाटर हाएसवाइफ' और 'कैट्स क्रैडल' जैसे उपन्यासों में जहाँ युद्ध के बेतुकेपन की बात कही, वहीं विज्ञान के फ़ायदे पर भी सवाल उठाए। अपने जीवन में कुल 19 उपन्यास लिखने वाले वोनेगट ने दर्जनों लघुकथाएँ, नाटक तथा निबंध लिखे। अपनी व्यावसायिक सफलता के बावजूद वे सारी ज़िंदगी तनाव में रहे। 1984 में उन्होंने आत्महत्या की भी कोशिश की थी। गिर पड़ने के कारण उनके दिमाग़ में चोट आ गई थी।

साभार स्वीकार पुस्तकें एवं पत्रिकाएँ

पुस्तकें

1. बादलों के साये तले (ग़ज़ल-संग्रह)
कवि : मो॰ सुलेमान

2. सृजन (कविता-संग्रह)
कवि : मो॰ सुलेमान

3. कागज़ी पैरहन (कविता-संग्रह)
प्रधान संपादक : मो॰ सुलेमान
प्रकाशक : गंगा-यमुना प्रकाशन, आवास सं॰ सी/6, पथ सं॰ 5, आर॰ ब्लॉक, पटना-1

4. अलहामे अरमाँ (कविता एवं ग़ज़ल-संग्रह)
कवि : मौलाना सैयद अब्दुल हकीम 'अरमाँ'
प्रकाशक : आस्ताना अमीनया, बसवरिया, बेतिया, प॰ चम्पारण

5. एहसास (ग़ज़ल-संग्रह)
कवि : डॉ॰ शमशाद हुसैन
प्रकाशक : एजुकेशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली

6. शाद अज़ीमाबादी (ग़ज़ल-संग्रह)
प्रस्तुति : अंजुम फ़तमी
प्रकाशक : बिहार उर्दू अकादमी, पटना-4

7. लफ़्ज़ाब (ग़ज़ल-संग्रह)
शायर : क़ौस सिद्दीक़ी
प्रकाशक : दानिश मर्कज़ (रजि॰), फुलवारी शरीफ़, पटना

8. अक्स अंदर अक्स (कहमकरनियाँ)
कवि : शाहिद जमील
प्रकाशक : निराली दुनिया पब्लिकेशन, दरियागंज, नई दिल्ली-2

9. मैं हूँ ना (आत्मकथा)
लेखक : सुखदेव नारायण
प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली-92

10. इंद्रधनुष (कविता-संग्रह)
कवि : सुखदेव नारायण
प्रकाशक : अ॰भा॰भा॰साहित्य सम्मेलन, पटना

11. मतभेद (कथा-संग्रह)
कथाकार : अली इमाम
प्रकाशक : सैयदा फ़िरदौसी, ख़ान मिर्ज़ा, पटना

12. ख़लल (ग़ज़ल-संग्रह)
कवि : तुलीफ़क़ीरचंद जालंधरी
प्रकाशक :

13. झोपड़ी के लाल
लेखक : प्रो॰ देव नारयण पासवान 'देव'
प्रकाशक : महात्मा ज्योतिबाफुले शोध संस्थान, गंगाबिगहा, गया।

14. डॉ॰ रामकरण पाल : व्यक्तित्व और विचार
संपादक : प्रो॰ रामबुझावन सिंह
प्रो॰ रामनरेश प्रसाद वर्मा

15. सागर-संध्या (काव्य-संग्रह)
कवि : मनु सिंह
प्रकाशक : सरदार पटेल साहित्य संस्थान, दिल्ली-92

15. प्रतीक्षा रहेगी (काव्य-संग्रह)
संपादक : जयसिंह अलवरी
प्रकाशक : राहुल प्रकाशन, सिरूगुप्पा बल्लारी, कर्णाटक

पत्रिकाएँ

1. राष्ट्रीय प्रसंग (मार्च 2007)
संपादक : विकास कुमार झा
पता : श्रीकृष्णपुरी, डाकघर के सामने, पटना

2. रश्मिरथि (नवम्बर-06 फ़रवरी, 2007)
संपादक : अरुण कुमार आर्य
पता : वार्ड सं॰-9, मुसाफ़िरख़ाना, सुलतानपुर, 227813 (उ॰प्र॰)

3. हरित वंसुधरा (जनवरी-मार्च 2007)
संपादक : डॉ॰ मेहता नगेंद्र सिंह
पता : 0/50, डॉक्टर्स कॉलोनी, पटना

4. लेखापरीक्षा-प्रकाश (अक्टूबर-दि॰ 06)
संपादक : मेहरबान सिंह नेगी
पता : सी॰ए॰जी॰ ऑफ़िस, नई दिल्ली

5. अणुव्रत (मार्च 2007)
संपादक : डॉ॰ महेन्द्र कर्णावट, नई दिल्ली

6. मैसूर हिंदी प्रचार परिषद् पत्रिका (मार्च, 07)

7. केरल हिंदी साहित्य अकादमी शोध पत्रिका (अप्रैल, 2007)
संपादक : डॉ॰ एन॰ चंद्रशेखरन नायर, तिरुवनंतपुरम

8. लोक शिक्षक मासिक (मार्च 2007)
संपादक : डॉ॰ सत्येन्द्र चतुर्वेदी, जयपुर

9. राष्ट्रभाषा (मार्च 2007)
प्र॰ संपादक : प्रा॰ अनंतराम त्रिपाठी, वर्धा

10. सूर्या स्मारिका -6
संपादक : रामशरण गौड़
पता : जे॰-35-138, सेक्टर-12, नोयडा (उ॰प्र॰)

11. साहित्य परिक्रमा (अप्रैल-जून 2007)
संपादक : मुरारी लाल गुप्त 'गीतेश'
पता : राष्ट्रोथान भवन, नई सड़क, बलिया

12. कविताश्री
संपादक : नलिनीकांत, अण्डाल, प॰ बंगाल

13. तलाश (प्रवेशांक)
संपादक : श्री धीरेन्द्र कुमार शर्मा, पटना

13. यह पल (अंक 7, 31 मई, 07)
संपादक : सैयद जावेद हसन, पटना

14. श्री प्रभा–अप्रैल 2007
प्रधान संपादक : डॉ. रमाशंकर श्रीवास्तव
आर-7, वाणी विहार, उत्तम नगर, नई दिल्ली-59

15. हिंदी प्रचार वाणी–मई 2007
प्रधान संपादक : सुश्री बी.एस. शांताबाई
178, चौथा मेन रोड, बैंगलूरू-560018

16. साहित्य परिजात–जनवरी-मार्च, 2007
संपादक : डॉ. सुंदरलाल कथूरिया
बी-3/79, जनकपुरी, नई दिल्ली-58

17. युगीन-मई 2007
संपादक : राजेन्द्र सानन
बी-52, सैक्टर-8, नोएडा-201301, गौतमबुद्धनगर

18. समय सुरभि अनंत-अप्रैल जून
संपादक : नरेन्द्र कुमार सिंह
शिवपुरी, नया जेल से पश्चिम,
पो./जिला–बेगुसराय-851101

त्रिमूर्ति ज्वेलर्स

बाईपास रोड, चास, बोकारो

झारखंड

दूरभाष : 65765

फैक्स : 65123

परीक्षा

प्रार्थनीय

सुरेश एवं राजीव

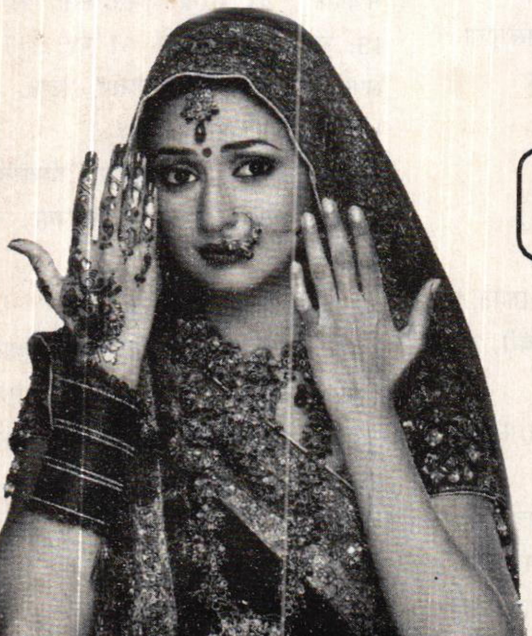

त्रिमूर्ति अलंकार

त्रिमूर्ति पैलेस

(रुपक सिनेमा के पूरब)

बाकरगंज,

पटना-800004

दूरभाष : 2662837

आधुनिक आभूषणों के निर्माता, नए डिजाइन, शुद्ध सोने-चाँदी तथा हीरे के गहनों का प्रमुख प्रतिष्ठान

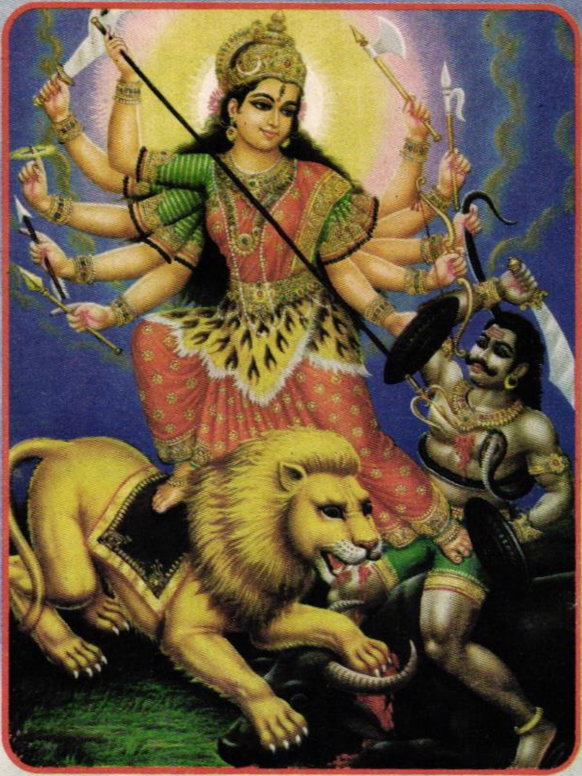

Arvind Kumar

Rajiv Kumar

RAJIV PAPER MART

Deals in :
All Kinds of White Printing Paper,
Art Paper & L.W.C. etc.

S-447, School Block-II,
Shakarpur, Delhi-110092

9968284416, 9810250834
9891570532, 9871460840
(O) 55794961, (R) 22482036

वर्ष : 9 अंक : 32 जुलाई-सितंबर 2007 RNI REG. NO. : DEL HIN/1999/791

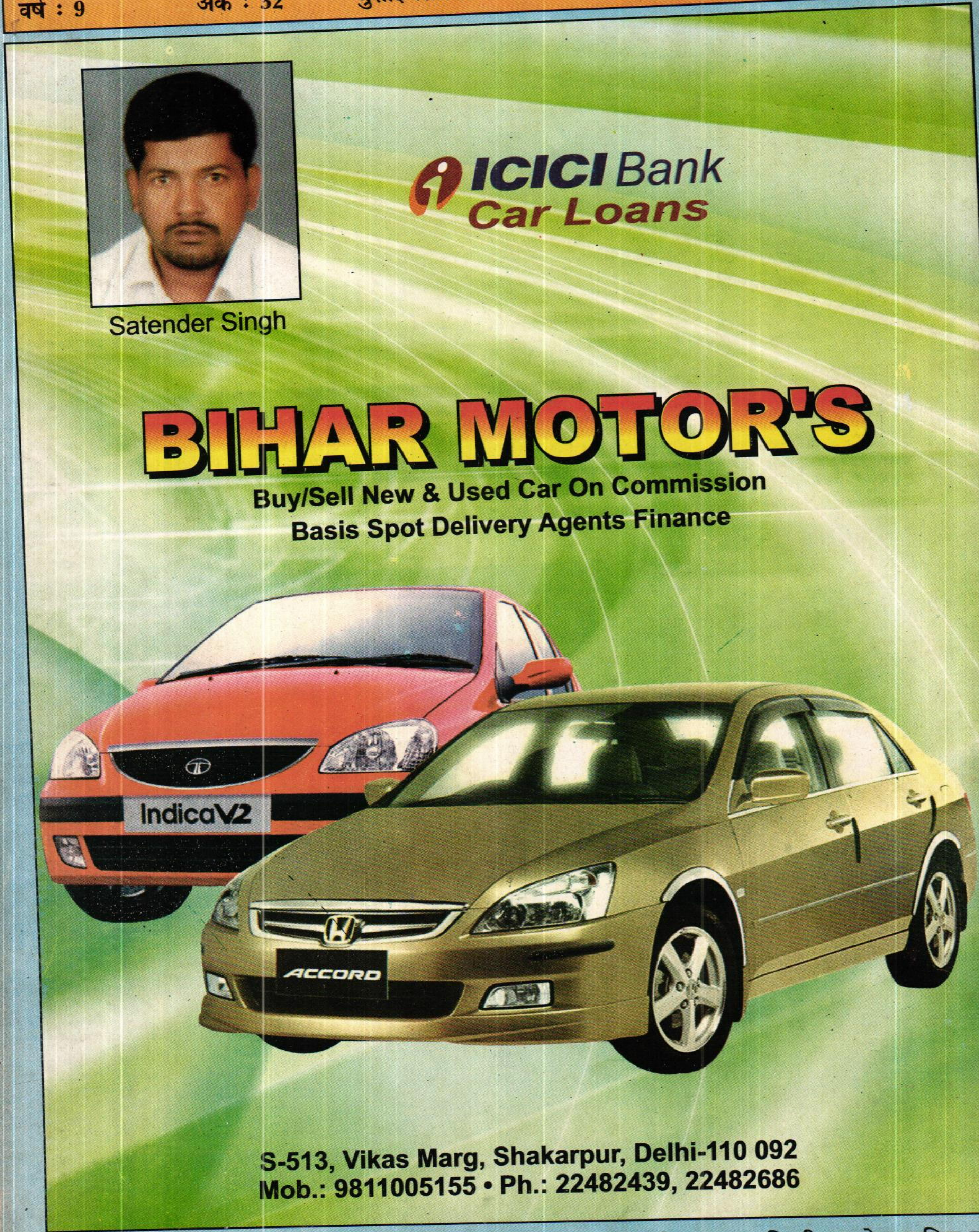

प्रकाशक, मुद्रक व स्वामी सिद्धेश्वर द्वारा 'दृष्टि', यू-207, विकास मार्ग, शकरपुर, दिल्ली-92 से प्रकाशित एवं प्रोलिफिक इनकारपोरेटिड, एक्स-47, ओखला फेस-2, नई दिल्ली-110020 से मुद्रित। संपादक-सिद्धेश्वर